संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

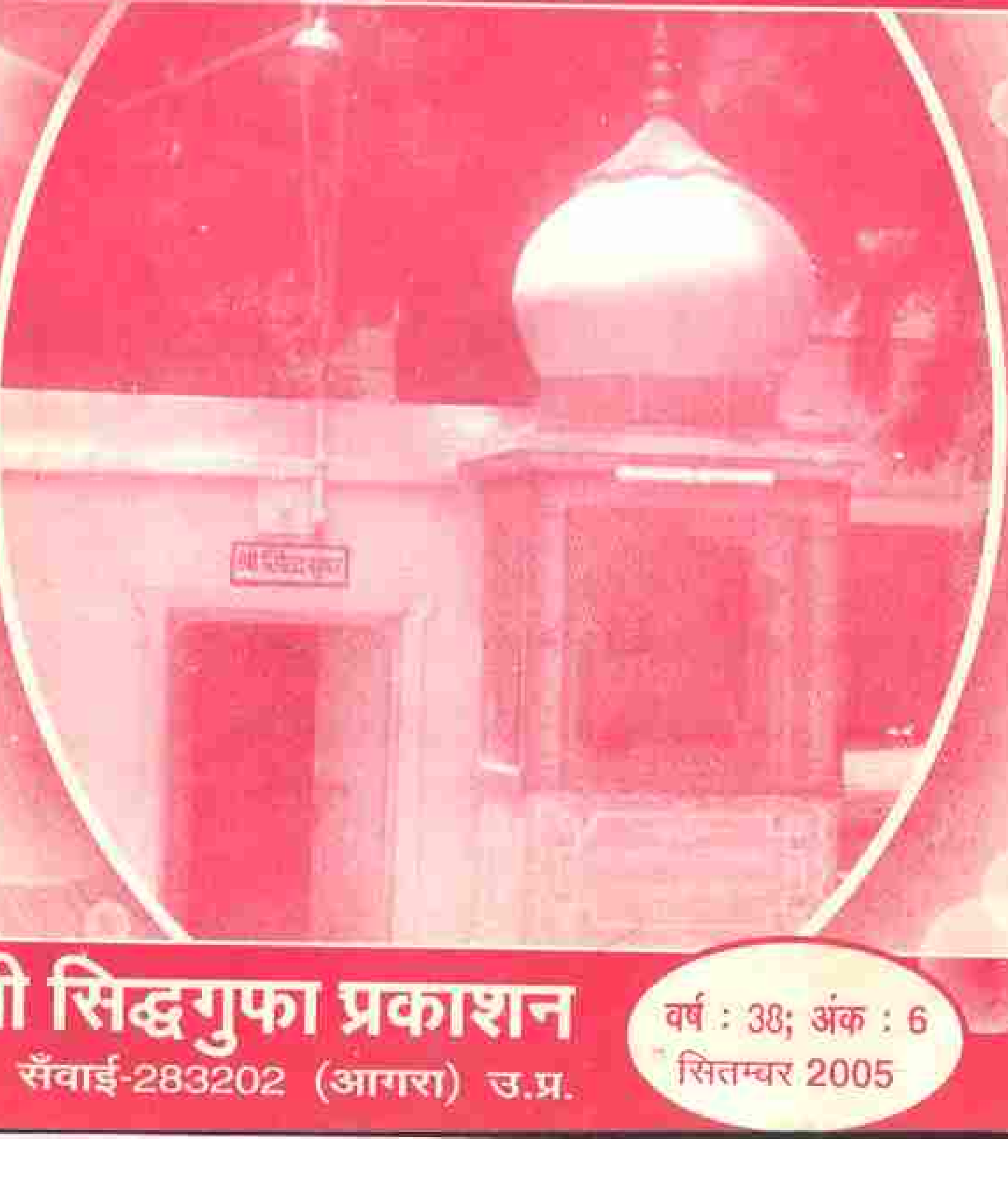

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 6

सितम्बर 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- ❐ अमृत कण 2
- ❐ कर्मयोगो विशिष्यते (विशेष लेख) 3
- ❐ सम्पादकीय 8
- ❐ सद्गुरु सानिध्य का महत्त प्रभाव –विजय सिंह, ... 10
- ❐ त्रय देव रूपं गुरु देव नमामि –वेदव्रत द्विवेदी (उगापुर) 14
- ❐ मुझको गुरु से प्यार है –जगदीश राय बंसल 'अधम' (सोनीपत) . 17
- ❐ बहन रामकली, अलौकिक सुरक्षा –केशवदेव उपाध्याय 18
- ❐ जीवन में सत्संग का प्रभाव –कृष्ण कुमार पाण्डे (गोरखपुर) 23
- ❐ युगाचार्य भगवान् कृष्ण की दृष्टि में यज्ञ –डा० जयनारायण राय 26
- ❐ संस्कार शक्ति व साधना शक्ति –कु० रुक्मणी वर्मा (सहारनपुर) 29
- ❐ परमधाम के पथ प्रदर्शक गुरुदेव –रचना शर्मा (गंगापुर सिटी) ... 34
- ❐ शान्ति-समता-मुक्ति आवश्यक (महर्षि अरविन्द) 40

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38
अंक 6

सितम्बर
2005

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु तहतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम् !

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफलचारु भक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्।।

अर्थात् गजानन्, भूतगणों से सेवित, कपित्थ, जम्बू जिसका प्रिय भोजन है, पार्वतीपुत्र, शोकविनाशक गणेशजी को मेरा नमन्!

अमृतकण

(विदुर नीति से)

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्।।

शिक्षा न पाये हुए तथा काबू में न आने वाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथी को मार्ग में मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वश में न रहने पर पुरुष को मार डालने में भी समर्थ होती हैं।

✿ ✿ ✿

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्।।

इन्द्रियाँ वश में न होने के कारण अर्थ को अनर्थ और अनर्थ को अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दुःख को भी सुख मान बैठता है।

✿ ✿ ✿

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते।।

जो धर्म और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के वश में हो जाता है वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, धन तथा स्त्री से हाथ धो बैठता है।

✿ ✿ ✿

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः।।

जो अधिक धन का स्वामी होकर भी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रखता है, वह इन्द्रियों को वश में रखने के कारण ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है।

✿ ✿ ✿

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने अधीन कर अपने से ही अपने आत्मा को जानने की इच्छा करे; क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है।

✿ ✿ ✿

□ विशेष लेख

कर्मयोगो विशिष्यते

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

त्रिलोकपावन अखिलात्मा भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में योग की महिमा को खोल–खोल कर बताया है। कर्मयोग एवं कर्मसन्यास के रहस्य को अर्जुन समझना चाहता है। वह भगवान से कहते है–आपने कर्म सन्यास की बात कही है और फिर योग की प्रशंसा करते हैं। भगवान ने इसके उत्तर में कहा है–

'संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरा वुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।।'

भगवान का आदेश है कर्म संन्यास से कर्म योग का दर्जा श्रेष्ठ है। कामनाओं का परित्याग करना संन्यास कहलाता है। यह बिना योग के नहीं हो सकता। हम शरीर से ही कर्म संन्यास करते है मन से नही। भगवान कहते है–

'कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसः स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।'

अर्थात् जो कर्मेन्द्रियों को रोक कर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते है, वे ढोंगी हैं। इसलिए भगवान ने अपने मुखारविन्द से कर्मयोग की महिमा इन शब्दों में गाई है–

'संन्यासस्तु महावाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योग युक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणा धिगच्छति।।'

अर्थात् हे अर्जुन ! योग के बिना संन्यास को प्राप्त करना कठिन है। जबकि, योग युक्त मुनि शीघ्र ही ब्रह्म तत्व को पा जाता है। योगी लोग समदर्शन वाले होते है। सब में आत्म तत्व को देखते हैं. **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शनः'** किन्तु, इसका अर्थ यह नही समझना चाहिए कि वे लोग व्यवहार में भी **'शुनि चैव श्वपाके च'** शुनि और श्वपाक–कुत्ते और चाण्डाल में मिले रहते हैं। समदर्शन का तात्पर्य एक होना नहीं है। जो पूर्ण आन्तरिक विकास वाले हैं, कन्दमूल खाने वाले हैं, उनका अन्तःकरण निर्मल होता है। अतः वे लोग न्यारे रहते हैं। हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही प्रथा है कि ब्राह्मण ही भोजन बनावें। बड़े–बड़े राजाओं के यहाँ भी ब्राह्मण होते थे। कारण यह था कि वे तपस्वी होते थे, उनमें तप और तेज होता था। शास्त्रीय सिद्धान्त है, मनुष्य के हाथों से तेज की धाराएं निकला करती हैं। यदि मानव में तामस भरा हुआ है तो उन धाराओं में तामस होगा। यही

कारण है कि लोग महात्माओं से प्रसाद लिया करते हैं। तुम लोग प्रसाद लेते हो–"गुरुजी ! प्रसाद दे दो। हमारा ध्यान लग जाएगा। हम प्रसाद दे देते हैं" हमारे पास एक बार दो अंग्रेज आए। हमने उन्हें गुफा की रज दी, उनका ध्यान लग गया। उसके बाद में हमें फिर से दिल्ली में मिले, वहाँ हमने उनको फूल का प्रसाद दिया, खूब अच्छा ध्यान लगा। उन्होंने रूस जाकर देवी सिंह सिसोदिया को पत्र लिखा। जिसमें लिखा था–"हम गुफा पर गये। वहाँ की मिट्टी खाई, खूब मन एकाग्र हुआ। यहाँ आकर हमने खूब मिट्टी खाई, फूल खाए, किन्तु कुछ नहीं हुआ। अब की बार यह यन्त्र लेकर आएंगे और देखेंगे कि गुफा में और महाराज जी में क्या करामात है"। दोनों अंग्रेज यन्त्र लेकर दोबारा मेरे पास आए। कहने लगे–हम आपको मशीन से देखेंगे। मशीन वगैरह लगाते रहे। किन्तु, उन्हें समझ नहीं आया।

दोबारा फूल का प्रसाद लिया, तीन चार घण्टे उठे नहीं। बाद में कहने लगे– आप रूस चलें। मैंने कहा–"हमारे लिए तो भारत ही बड़ा है।" कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग आत्मावान् होते हैं, ध्यान परायण होते हैं उनके हाथों से तेज की धाराएं शुभ्र निकलती हैं। हमारे हिन्दू समाज में छोटे–बड़ों को प्रणाम कहते हैं। बड़े हाथ से स्पर्श कर आशीर्वाद देते हैं–**'आयुष्मान् भव !'** आदि–आदि। हाथों से पैर छूने का अर्थ है शक्ति लेना। हाथ सिर पर रखने का अर्थ है शक्ति देना। यह वैज्ञानिक बात है। हमारे पूर्वज इस बात को जानते थे। हमारे ऋषि इस बात को जानते थे कि **'यथा अन्नं तथा मनः'** जैसा अन्न होता है वैसा ही मन बनता है। यदि एक व्यक्ति चोर का, हत्यारे का अन्न खाता है तो मन में विकार पैदा हो जाता है। ऋषिकेश आश्रम में श्री प्रभु जी के पास एक दरोगा जलेबी लेकर आया। श्री प्रभु जी ने इसे खाने को मना कर दिया था। किन्तु, किसी एक ने यह आज्ञा सुनी नहीं थी, उसने इसे सबको बाँट दिया। परिणाम यह हुआ कि तीन दिन तक किसी का ध्यान लगा ही नहीं। नरसिंह मूर्ति जी कहने लगे हम न्यौली आदि करके इसे निकाल देंगे किन्तु श्री प्रभु जी ने कहा– **"आँतों ने रस ले लिया है असर तो करेगा ही करेगा"**। सब लोग प्रभु जी से कहने लगे। प्रभु जी ! अब हम लोग क्या करें ? श्री प्रभु जी ने कहा–तुम गंगा किनारे बसुधारा (चन्द्रेश्वर) के पास जाकर बैठ जाओ। एक महात्मा उस पार बैठते हैं। कभी–कभी अपनी कुटिया से बाहर निकलते हैं। उनकी मदद तुम पर हो गई तो ध्यान लग जाएगा। देखो, संसार का कल्याण तो करना चाहिए। किन्तु अपने को नहीं खोना चाहिए। भगवान ने गीता में कहा है –

'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।'

अर्थात् जो योग में बढ़ना चाहता है उसे अपने अभ्यास रूपी कर्म में लगे रहना चाहिए। मनुष्य को पुण्यों का खजाना बढ़ाते रहना चाहिए। पुण्य के प्रभाव से ही मान–सम्मान,

धन एवं सुख मिलता है। पुण्यों का खजाना जमा करना भी कठिन बात है। मनुष्य दान करता है, पुण्य करता है–ख्याति चाहता है कि अमुक का अन्न क्षेत्र चल रहा है–बड़ाई चाहने से पुण्य का बदला मिल जाता है। प्रायः पुण्य समाप्त हो जाता है। कुछ पुण्यों का फल साथ–साथ मिल जाता है। कुछ का जन्मान्तर में मिलता है। पुण्य बढ़ता रहे, बढ़ते–बढ़ते निष्काम हो जाए। इससे निष्काम नहीं हो सकता कि कोई कह दे कि हमने यह काम तो कर दिया है किन्तु हमें फल की इच्छा नहीं है। इतना कुछ कह देना भी फल देने के लिए काफी है। इस प्रकार से कहना भी श्लाघा है और उसका फल भी मिलता ही है। यह नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य श्लाघा नहीं चाहें। श्लाघा हम भी चाहते हैं, तुम भी चाहते हो, सभी चाहते हैं। इस प्रकार से इच्छाओं से छूटने का उपाय है। **''कुर्वन्नेवेह कर्माणि''** मनुष्य कर्म करता चला जाए। एक मनुष्य जो कर्म नहीं करता, अल्हड़ पड़ा रहता है वह तो एक प्रकार से ईश्वर का अपराधी है। जो व्यक्ति कर्मरत नहीं है, वह वायुमण्डल को दूषित करता है। वह पड़ा रहेगा, पड़े–पड़े उल्टी–उल्टी बाते सूझेंगी। योगी ध्यानी तो वह है नहीं, अकेला पड़े रहने से उसे दुर्व्यसन ही घेरेंगे। इसलिए जो मनुष्य कर्मरत नहीं है वह ईश्वर का अपराधी है। वेद भगवान की आज्ञा है– **''कुर्वन्नेह कर्माणि जिजि विशेत शतः समाः''** जो मनुष्य १०० वर्ष की आयु तक निष्काम कर्म करते हुए जीने की इच्छा रखते हैं वह कर्मफल से अलहदा हो जाते हैं। हमने जब सवांई में पहले–पहले योग प्रचार आरम्भ किया तो सुबह से लेकर दोपहर २ बजे तक लगभग १५० व्यक्तियों को नेति और आसन कराया करते थे।

मेरे पास एक संन्यासी महात्मा का संदेश आया। उसको लोग लम्बा होने के कारण लम्बे नारायण कहते थे। उन्होंने मुझे चिट्ठी लिखकर के भेजी उसमें लिखा था–निवृति मार्ग मे रहने वाले व्यक्ति को प्रवृति मार्ग में नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए यह नेति आसन आदि का प्रपंच आप छोड़ दें। खैर ! हम तो अपने कर्म में लगे ही रहे उसका जो परिणाम हुआ वह सब के सामने है। गीता में भगवान कहते हैं–

''कर्मेन्द्रियाणि संयम्य या आस्ते मनसा स्मरन् इन्द्रियार्थान विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते'' जो व्यक्ति कर्मेन्द्रियों को रोक कर मन से विषयों का चिन्तन करता है वह ढोंगी होता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कर्म करते–करते निष्कामता को प्राप्त हो जाता है। **'अहं ब्रह्मास्मि' 'प्रज्ञानंब्रह्म'** दो चार बार ऐसा कह दिया ऐसी धारणा करते रहे और पड़े रहे और यह सोचते रहे कि अब हमारे लिए कोई कर्म आवश्यक नहीं ऐसे पड़े रहने से ही शुभ भावना नहीं होती। **न लिङ्गम् धर्म कारणम्** वेश (चिन्ह) धर्म का कारण नहीं होता। एक बार मैं ऋषिकेश में रात के लगभग १०–३० बजे गंगा किनारे से ध्यान से उठकर आया। रास्ते में एक संन्यासी महात्मा जी की कुटिया पड़ती थी। उसमें से तीव्र बदबू आ रही थी। मैंने अन्दर झाँक कर देखा, तो महात्मा जी मछलियाँ तल रहे थे। मेरे

कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग एकान्त में पड़े रहते हैं, कुछ काम नहीं करते। वे भी दुष्कर्मों से मुक्त नहीं हो पाते। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को नियमानुवर्तिता में लगाए रखे। हम अपने बच्चों को **समकायशिरोग्रीव** होकर बैठने को कहते हैं। जिनका ध्यान नहीं लगता उनका भी लगने लगेगा। इससे सुषुम्ना चलती है। उसमें भी ब्रह्मनाड़ी में एकाग्रता होती है। यदि मनुष्य संयमी है सदाचारी है, खान पान ठीक है, मिताहारी है, तो उसका मन एकाग्र हो जाता है। भगवान संकेत करते हैं।

'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।'

साधक का भोजन परिमित होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं कि सब को ही थोड़ा खाना चाहिए। एक नौजवान काफी मात्रा में भोजन का परिपाक कर सकता है। उसे तदनुसार ही भोजन करना चाहिए। हम उतना भोजन करना चाहिए, जितना कि जठराग्नि ठीक से परिपाक कर सके। इतना थोड़ा भी नहीं होना चाहिए कि अग्नि शरीर को ही जलाने लगे। इसलिए भोजन युक्त हो। अपने बलाबल को देखकर भोजन करें। साधक का सोना, जागना सब ठीक समय पर होना चाहिए। युक्त विहार, मनोरंजन व हरकतें भी उपयुक्त होनी चाहिए। साधक को थोड़ा बोलना चाहिए। वाणी की जितनी जरूरत हो उतना ही बोले। सभी कर्म व चेष्टा समय पर और ठीक–ठीक करे तो **'योगी भवति दुःखहा'**। योग दुखों को दूर करने वाला होता है। भगवान् गीता में कर्मयोग और संन्यास को न्यारा–न्यारा बतलाते हैं। यदि हम केवल **'ब्रह्मास्मि-ब्रह्मास्मि'** कहते रहें तो यह जीभ का कार्य है, शब्द आकाश का गुण है, आकाश में लय हो जाता है। बाह्य व्यापार से ब्रह्मत्व नहीं आएगा। **'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते'** अपनी सुषुम्ना को चलाओ। जो खट्टे–मीठे पदार्थ खाता है तथा बहुत खाता है उसकी सुषुम्ना नहीं चलेगी। किसकी चलेगी ? जो जप करता है। तप करता है, स्वाध्याय करता है। जिसका आहार–विहार युक्त है, जो जितेन्द्रिय है उसकी सुषुम्ना चलेगी।

सुषुम्ना के भीतर तीन नाड़ियाँ हैं, बीच में ब्रह्मनाड़ी है तथा एक तरफ वज्रा और दूसरी तरफ चित्रिणी है। यदि योगी अपने को यम–नियमों के अनुसार नहीं ढालता तो कुण्डलिनी चित्रिणी या वज्रा को छूएगी, ब्रह्मनाड़ी को नहीं। यदि चित्रिणी को छूती है तो दृश्य दिखाई देंगे, वज्रा को कुण्डलिनी छूएगी तो क्रोध अहंकार को स्पर्श करेगी। अतः जप और स्वाध्याय को बढ़ाओ, ताकि कुण्डलिनी ब्रह्मनाड़ी को स्पर्श करे। हठयोग में बन्ध लगाते हैं, वह और बात है किन्तु ध्यानी को **'समकायशिरोग्रीव'** होना चाहिए। योग में **'आरुरुक्षो'** के लिए ये सब आवश्यक कर्म हैं। जब साधक योगारुढ हो जाता है, वृत्ति ऊपर चली जाती है। वह आत्मस्थ हो जाता है। तब वह **'सर्वभूतिस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'**। योगी स्पष्ट देखता है, कल्पना या भाव से नहीं। इस में भी मैं हूँ, इस में भी मैं हूँ' इस प्रकार से सर्वत्र अपने ही तेज को देखता है। जब तक हमारी बाह्य वृत्ति रहेगी, समता नहीं आ

सकती। जब वृत्ति भीतर को चलेगी, तभी द्वन्द्व सहन होगा। भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी। ये द्वन्द्व तभी आपको नहीं सतायेंगे, जब तुम्हारी वृत्ति भीतर को चलेगी। निर्विकल्प तेज में जब योगी लीन होगा, द्वन्द्वाभास भी नहीं होगा। इसलिए तुम्हें योगारूढ़ हो जाना चाहिए। कहने मात्र से योगारूढ़ नहीं हो जाओगे, ध्यान के अभ्यास से, भीतर के नजारे प्रारम्भ होते हैं। तब साधक शांति की ओर जाता है।

'सर्वद्वारेषु देहऽस्मिन् प्रकाश उपजायते'

अर्थात् जब ध्यानाभ्यास से सतोगुण का पूर्ण विकास हो जाता है, तब योगी देखता है कि उसके रोम कूपों से प्रकाश की धारायें निकल रही हैं, इसलिए यदि दुःख द्वन्द्वों से छूटना चाहते हो, तो अन्तर्दृष्टा बनो। यह तभी होगा जब वृत्ति को भीतर की ओर ले जाने का प्रयत्न करोगे। जो योग की ओर चलेंगे, उनका ध्यान अवश्य लगेगा। अस्तु।

✿ ✿ ✿

श्री कृष्ण तत्व

श्री कृष्ण महाराज स्वयं गीता में कहते हैं–**'ब्रह्मणों हि प्रतिष्ठाहम्'** अर्थात् ब्रह्म का घनीभूत विग्रह यानि मूर्तिमान् ब्रह्म मैं ही हूँ। व्यासदेव जी भी श्रीकृष्ण महाराज की गणना अवतारों में न कर **'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्'** कहते हैं। श्रीमद्भागवत के रचयिता व्यासजी स्वयं उन्हें परिपूर्ण ब्रह्म कहते हैं और उन्हीं की लीला का विस्तार सहित वर्णन करते हैं। वास्तव में विचार कर देखा जाये तो श्रीकृष्ण लीला में ब्रह्म का परिपूर्ण भाव जैसा सुस्पष्ट झलकता है, वैसा प्रायः दूसरी किसी लीला में नहीं दीख पड़ता।

ब्रह्म तीन भावों में प्रकाशमान है–सत्, चित् और आनन्द। श्रीकृष्ण ने (१) अधर्म का विनाशकर मथुरा में धर्मराज्य स्थापित कर अपने सत् भाव को। (२) उपदेश देने के बहाने अर्जुन–उद्धव आदि भक्तों को ज्ञान का परमतत्व सुनाकर अपने चित्तभाव को और (३) श्री वृन्दावन लीला में शान्त-दास्य आदि पाँचों भावों को पूर्ण रूप से प्रकाशित कर, भावों में परम मधुर भाव की लीला दिखाकर अपने आनन्द-भाव को विकसित किया और इस तरह परिपूर्ण सच्चिदानन्द की प्रकट लीला एक ही साथ दिखाकर भक्तों के ह्रदयों को मार्जित और आनन्दित तथा सारे भूमण्डल को पवित्र और सुशोभित किया।

✿ ✿ ✿

• सम्पादकीय

ध्यान योग : साधक का परम धन

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

उपनिषदों में **'नास्ति योगात्परम बलम्'** कहकर योग की महत्ता प्रदर्शित की गई है। बलहीन व्यक्ति को आत्मदर्शन नहीं हो सकता। उपनिषद् का वचन है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** अर्थात् बलहीन व्यक्ति को आत्मदर्शन लाभ नहीं हो सकता है। यहाँ 'बलहीन' का तात्पर्य है जो ध्यान बल से हीन है अन्तर्दृष्टि से विहीन है वह आत्मलाभ नहीं पा सकता। आत्मदर्शन के न होने में कर्म एवं संस्कार ही कारण है, जब तक कर्मों का भुगतान नहीं हो जाता आत्मस्थिति नहीं बनती है। कर्मबन्धन के क्षय करने का एकमात्र उपाय ध्यानयोग है। **'युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्'** अर्थात् ध्यान योगी सर्वकर्मफल का त्याग करके अखण्ड शान्ति को प्राप्त करता है। इसी अवस्था में आत्मलाभ या आत्मदर्शन होता है। **'ध्यानात् कर्मफल त्यागः'** कहकर भगवान् ने इस की पुष्टि की है। ध्यान की अवस्था तक पहुँचने के लिये पतञ्जलि देव जी महाराज ने धारणा का सूत्र दिया है। **'देशबन्धचित्तस्य धारणा'** अर्थात् एक स्थान विशेष पर चित्त को एकाग्र करना धारणा कहलाती है। यह स्थान विशेष शरीर के अन्तर्गत कहीं भी माना जा सकता है। व्यासदेव जी महाराज ने हृदय प्रदेश, नाभिचक्र, नासिकाग्र मूलाधार आदि स्थानों को धारणा का केन्द्र माना है। षटचक्रों की साधना में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध एवं आज्ञाचक्र को धारणा का केन्द्र बनाया जाता है। जो साधक भक्तिमार्गी हैं वे हृदय कमल में अपने इष्ट का ध्यान कर सकते हैं। शरीर के बाहर चन्द्रमा, ज्योति आदि को केन्द्र मानकर धारणा का अभ्यास किया जा सकता है। पातञ्जल योग साधना के अतिरिक्त भी बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों में भी अपने-अपने प्रकार से धारणा की कल्पना की गई है। धारणा का एक ही उद्देश्य है कि साधक अपनी चेतना शक्ति को किसी एक केन्द्र बिन्दु पर एकाग्र कर ले। मन के एक निश्चित बिन्दु पर नियमित एवं सतत् अभ्यास करने पर उत्तरोत्तर प्रगति होती है। जो लोग अपने लक्ष्य को बदलते रहते हैं उन्हें अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं हो पाती।

इसी प्रकार से कई वर्षों तक दो ढाई घण्टे धारणा का अभ्यास किये जाने पर मन एकाग्र हो जाता है और स्वतः ही ध्यान की स्थिति बनती है। एक ही लक्ष्य पर लगातार वृत्ति एकाग्र बनी रहे तो धारणा ही ध्यान के रूप में बदल जाती है। **'तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्'** अर्थात् तैल धारावत एक ही वृत्ति का प्रवाह बना रहे वही ध्यान कहलाता है। इस स्थिति में वृत्ति की निरन्तरता में दूसरी वृत्ति नहीं आनी चाहिये तभी ध्यान कहलाता है। यह ध्यान स्थिति ही प्रगाढ़ता को प्राप्त हो जाये तो **समाधि** कहलाती है। समाधि की परिभाषा पतञ्जलि देव जी ने **'तदेव अर्थमात्रनिर्भासम् स्वरूपशून्यमिव समाधि'** कहकर की है। समाधि के समय ध्यान करने वाला अपने बोध से शून्य सा हुआ ध्येयाकार बन जाता है। इसी कारण से ध्येय में लयता के कारण **शिवोऽहम्, कृष्णोऽहम्** आदि की अनुभूति साधक को होती रहती है। इसे ही **सम्प्रज्ञात समाधि** कहते हैं। इस समाधि में योगी का अपने इष्ट में तादात्म्य हो जाता है। इसी से इष्ट की शक्तियों का प्रादुर्भाव ध्याता के अन्दर होने लगता है। ध्यान योगी की महिमा उपनिषदों में मुक्त कण्ठ से गाई गई है। ध्यान योग ही साधक को दिव्य दृष्टि प्रदान करती है। मन, शरीर, बुद्धि सभी अमृतमय हो जाते हैं, ध्यान योग के विज्ञान से।

ध्यान योग से ही क्लिष्ट से क्लिष्ट संस्कार क्षय हो जाते हैं। इसी विज्ञान व विद्या के प्रभाव से ही भारत भूमि में योगियों के अलौकिक चरित्र सुने व देखे जाते हैं। ध्यानयोग ही राजयोग अथवा अध्यात्म का राजमार्ग है। इसे ही **अध्यात्मयोग** कहा जाता है। इस में उन्नति प्राप्त करने के लिये गुरु कृपा, साधना में नैरन्तर्य एवं प्रबल व प्रवण संस्कार– ये तीन बातें आवश्यक हैं। प्रबल संस्कार होने पर ही साधना के प्रति श्रद्धा होती है इसे ही रुचि कह सकते हैं। इसीलिये भगवान् ने गीता में **'मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये'** की बात कही है। हजारों में कोई योग साधना की सिद्धि के लिये यत्न करता है उनमें से कोई-कोई पूर्णता को प्राप्त करता है। ध्यान योग ही सकल शक्तियों का, सिद्धियों का प्रदाता है। इस मार्ग पर चलने वाले लोग ही बिरले पाये जाते हैं। धर्म एवं अध्यात्म के नाम पर सब कुछ त्याग करने का अभिनय करने वाले लोग तो हजारों होते हैं किन्तु श्रद्धापूर्वक, ज्ञानपूर्वक, तत्परता से आगे बढ़ने वाले अधिक नहीं होते हैं। कोई–कोई भाग्यशाली मनुष्य ही योग मार्ग का पथिक बनता है और आगे उन्नति पाकर अपने को धन्य एवं कृतकार्य बना पाता है। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक स्वयं को इस मार्ग का पथिक बना लेना चाहिये। इसी से जन्म–मरण से मुक्ति मिल पाती है।

✿ ✿ ✿

सद्गुरु सानिध्य का महत प्रभाव

प्रेषक–विजय सिंह

श्री गुरुगीता माहात्म्य में श्रद्धेय भाई विनय मालवीय जी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मननीय बात लिखते हैं–"साधना में आने वाले अन्तरायों की निवृत्ति हेतु भगवान पतंजलि देव जी ने **"तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः"** की व्याख्या करते समय प्रवचन में श्री गुरुदेव जी के शब्द थे "हमें कहते हुये संकोच होता है कि भगवान पतंजलि देव जी के इस सूत्र का अभिप्राय यही है कि इन सभी अन्तरायों की निवृत्ति के लिये साधक को चाहिए कि 'एक तत्व' अर्थात् अपने सद्गुरु जी का ध्यान करें।" परात्पर जगतगुरु भगवान् शंकर जी ने भी गुरुगीता में पार्वतीजी को उपदेश दिया है–

ध्यान मूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजा मूलम् गुरोः पदम्।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरोः कृपा।।

वैदिक–उपनैषदिक उपाख्यानों में आरुणिक, उद्यालक, सत्यकाम जाबाल जैसे कई पात्र हैं जिन्हें गुरु सेवा, गुरुवचन पालन करते करते ही ब्रह्ममयता स्वयमेव अथवा गुरुप्रेरित प्रतीकों द्वारा प्राप्त हुआ।

ऐसा ही एक मार्मिक उपाख्यान इस लेख का मूल विषय है। **"यस्यप्रसादात पतिता सुपावना"** अर्थात् जिन गुरुदेव की प्रसन्नता से अति पतित भी सुपावन अति शीघ्र हो जाता है। यह कथा अति प्राचीन है। व्याध को किस प्रकार सद्गुरु सानिध्य से ब्रह्मज्ञता एवं सिद्धता प्राप्त हुई, यह पठनीय एवं आचरणीय है।

आरुणी नाम के एक महान तपस्वी ब्राह्मण थे। उनका आश्रम देविका नदी (पंजाब की देग नदी) के सुन्दर तट पर था। एक दिन जब वे नदी के तट पर बैठे तप कर रहे थे तो उन्होंने सामने से आते एक क्रूर, भयंकर भेषधारि व्याघ को देखा। वह ब्राह्मण को मारकर आश्रम में उपलब्ध अल्प सामग्री लूटने की मंशा रखता था। व्याघ घोर रव करता आगे मारने हेतु उद्यत हुआ परन्तु ब्राह्मण जो जप में तल्लीन थे उनको देखते ही वह व्याघ डर सा गया। क्योंकि स्वयं नारायण का तेज मुनि में व्याप्त व्याघ ने देखा और उसी पल धनुष वाण हाथ से गिरा दिया तथा कहा– हे देव ! मैं आपको मारने के विचार से ही यहाँ आया था; परन्तु आपको देखते ही मेरी क्रूर–बुद्धि पता नहीं अब कहाँ चली गयी। विप्रवर ! अब तक मेरा जीवन सदा पाप करते ही व्यतीत हुआ है। हजारों ब्राह्मणों का वध एवं हजारों साध्वी स्त्रियों का सतित्व भंग करता रहा हूँ। महाभाग ! मुझे इस समय हमारी क्या गति होगी यह सोचकर अत्यन्त भयभीत हो रहा हूँ। मेरे उद्धार हेतु मुझे अपने शरण में लेकर उपदेश करें।

महात्मा आरुणी मन में यह सोचकर कि यह व्याध ब्रह्मघाती महान पापी है वे उससे कुछ नहीं बोले और जप में लीन रहे। वह व्याध उत्तर न पाकर भी वहीं ठहर गया। वह महात्मा के नियमित धार्मिक कार्यक्रम को देखता और तपस्या पूर्ण ढंग से सेवा में लगा हुआ यथा साध्य उनका अनुकरण करने की चेष्टा करता था।

एक दिन जिस समय महात्मा आरुणी नदी में स्नान कर रहे थे एक भूखा बाघ उन मुनि पर वार करने को उद्यत था इसी बीच व्याध, जो पास ही मुनि की सेवा में रत था, बाघ को मार डाला। मरने पर बाघ के शरीर से एक दिव्य पुरुष निकला। उसने कहा– हे मुनिवर ! आपकी कृपा से मेरे सारे पाप धुल गये। अब मैं शुद्ध एवं कृतार्थ होकर भगवान विष्णु के लोक को जा रहा हूँ।

हुआ यह था कि जब बाघ ने स्नान करते मुनि पर छलांग लगायी उस समय चौकरी करते हुए व्याध ने अपने एक बाण से ही बाघ का काम तमाम कर दिया। इस अनहोनी से घबड़ाहट में मुनि के मुख से सहसा **''ॐ नमोनारायणाय''** मंत्र निकल गया। यह ध्वनि मरते बाघ को सुनाई पड़ी। जिसके फलस्वरूप वह दिव्य धाम जाने हेतु दिव्य तनुधारी में रूपान्तरित हुआ। पूर्व जन्म में यह बाघ दीर्घबाहु नाम का प्रतापी राजा था। राजमद में वह ऋषि–मुनियों का अपमान करने के कारण शापित होकर निर्दयी बाघ योनि को प्राप्त हुआ था। श्रापमोचन हेतु प्रार्थना करने पर कहा गया कि मृत्यु के समय भगवान् नारायण का नाम तेरे कानों में पड़ेगा और उससे तेरा उद्धार होगा।

बाघ के पंजे से छूटकर मुनि आरुणी व्याध से बोले–आज बाघ मुझे खा जाता। ऐसे समय तुमने मेरी रक्षा की है। इसलिये हे उत्तम नियमों का पालन करने वाले वत्स ! मैं तुमसे संतुष्ट हूँ, तुम वर माँगो। व्याध ने कहा प्रभो ! मेरे लिये यही वर है कि आप मेरे प्रति कृपालु रहें। प्रेमपूर्वक बातें करते रहे हैं।

महात्मा आरुणी ने कहा – अनघ ! उस समय तुममें अनेक प्रकार के पाप थे। मेरे पास रहने, देविका नदी में स्नान करने तथा भगवान नारायण का नाम सुनने से तुम्हारे पाप नष्ट हो गये हैं। साधो ! तुम अब मेरी आज्ञा से यहीं रहकर मेरे बताये साधन को करते रहो उससे तुम्हारा कल्याण होगा। फिर एक दिन महात्मा आरुणी सहसा उठकर कहीं चले गये।

गुरुदेव आरुणी के चले जाने पर अब वह व्याध उनका ही चिन्तन मन ही मन गुरु स्वरूप का ध्यान कठिन तप के साथ करने लगा। भूख लगने पर वह वृक्ष से गिरे सूखे पत्ते खा लिया करता था।

एक दिन जब भूख से पीड़ित व्याध पेड़ के पास से सूखे पत्ते उठाकर खाने जा रहा था उसी समय उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी दिया–इन्हें मत खाओ, निकृष्ट पत्ते हैं। वह

उसे छोड़ कर अन्यत्र वृक्ष के पास पत्ता उठाकर खाने को हुआ तब पुनः वही आकाशवाणी सुनायी पड़ा। उसने उस दिन कुछ भी नहीं खाया और निराहार रहकर बड़ी सावधानी के साथ गुरुदेव आरुणी को सर्वाङ्ग स्मरण करते हुये तप तत्पर रहा। स्वाध्यायशील के लिए सिद्धान्त है।

उसी समय महर्षि दुर्वासाजी उसके पास पधारे–

देवाः ऋषयाः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य
दर्शनं यच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति।

देवता, ऋषिगण, सिद्धगण स्वाध्यायशील व्यक्तियों पर कृपा करते हैं और उनको सफल मनोरथ बनाते हैं।

महर्षि दुर्वासा ने देखा निराहारी गुरुभक्त व्याध के शरीर में प्राणमात्र शेष हैं परन्तु दिव्य तेज़ से वह प्रदीप्त है।

व्याध ने सिर झुकाकर प्रणाम किया और बोला–भगवन ! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। महर्षि बोले– तुम अपने पास आये मुझ अतिथि को जौ, गेहूँ एवं धान्य से भलीभाँति सिद्ध किया हुआ अन्न दो। मैं भूख से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। निराहारी व्याध सोचने लगा– यह सब सामग्री कहाँ से मिलेगी। अपने सद्गुरु के चिन्तन में लीन हुआ तभी आकाश से सोने का पवित्र पात्र उसके सामने आ गिरा। वह पात्र सिद्ध अन्नों से पूर्ण था। व्याध प्रसन्नता पूर्वक वह स्वर्णपात्र सिद्ध अन्नों से भरा हुआ महर्षि के पास ले जाकर विनय पूर्वक बोला– ब्रह्मन् ! यदि आपकी मुझ पर कृपा हो तो यह आसन लें और पैर धोकर यह भोग ग्रहण करें। व्याध की परीक्षा करने के विचार से महर्षि ने कहा– व्याध ! मैं नदी जाने में असमर्थ हूँ। मेरे और तुम्हारे पास जल पात्र भी नहीं है। फिर मेरा पैर कैसे धुल सकता है। व्याध पुनः चिन्ताग्रस्त हो सोचने लगा अब मैं क्या करूँ ? कैसे मुनि जी का भोजन मेरे यहाँ हो ? उस चतुर व्याध ने मन–ही–मन अपने गुरु आरुणी का स्मरण किया। साथ ही उसने देविका नदी की भी स्तुतिपूर्वक प्रार्थना किया। हे देवी ! मैंने महापाप किया है। देवता, मंत्र और पूजन का विधान मैं कुछ भी नहीं जानता। केवल गुरु के उत्तम चरणों का ध्यान करने से मेरा सदा कल्याण होता आया है। आप मुझ पर कृपा करें। हे देवी ! आप दुर्वासा ऋषि के सनिकट पधारने की कृपा करें। अहो ! महत आश्चर्य ! देविका नदी वहीं पहुँच गयी जहाँ दुर्वासा मुनि विराजमान थे।

ये देखकर मुनि को अपार हर्ष एवं आश्चर्य हुआ। श्रद्धापूर्वक दिये गये अन्न को उन्होंने ग्रहण किया। उस समय व्याध के शरीर में हड्डी ही शेष थी। वह दुर्बल था। दुर्वासा जी प्रसन्नता से भरे हुये बोले – तुम अभी सुपुष्ट काया के धनी हो जाओ। व्याध तत्काल सर्वाङ्ग पुष्ट हो गया। गुरुभक्त व्याध से पुनः वर देते हुये महर्षि दुर्वासा ने कहा

– **अंगोसहित वेद तथा रहस्य'** के साथ पद एवं क्रम, ब्रह्म–विद्या और पुराण तुम्हें अभी सभी प्रत्यक्ष हो जायें। आज से तुम ऋषियों में अग्रगण्य सत्यतपा नामक ऋषि कहे जाओगे।

इस कथा में क्रूर व्याध का सिद्ध आरुणिक का दर्शन लाभ से अन्तःकरण रूपान्तरण। नाम जप से सत्व का विकास तथा सद्गुरु सेवा से, सद्गुरु प्रसन्नता से, अन्तर जगत में प्रवेश। स्वाध्याय एवं सद्गुरु शरणागति से सर्व परीक्षा में सर्वोत्तम रूप से उत्तीर्ण होना। **यैस्य स्मरण मात्रेण ज्ञान समुपद्यते"** को चरितार्थ करता है।

✿ ✿ ✿

अन्धं तमो विशेयुस्ते ये चैवात्महनो जनाः।
भुक्त्वा निरयसाहस्रं ते च स्युर्ग्रामसूकराः।।
आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात् क्वापि विपश्चिता।
इहापि च परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम्।।

(स्क० पु० काशीख० १२/१३)

जो लोग आत्म हत्यारे हैं, वे लोग घोर नरकों में जाते हैं और हजारों नरक यातनाएँ भोगकर पुनः देहाती सूअरों की योनि में जन्म लेते हैं। इसलिये समझदार मनुष्य को कभी भूलकर भी आत्महत्या नहीं करनी चाहिये; क्योंकि आत्मघातियों का न इस लोक में और न परलोक में ही कल्याण होता है।

त्रय देव रूपं गुरु देव नमामि।।

प्रेषक–**वेदव्रत द्विवेदी**, उमापुर (इलाहाबाद)

अरेण्यं वरेण्यं सुरेशं रमेशं त्रय देव रूपं गुरु देव नामामि।।

यह महामन्त्र वाक्य साधारण वाक्य नही अपितु त्रिजगत पावन योगयोगेश्वर दादा गुरु देव महाप्रभु श्री रामलाल जी के चरण कमलों की वन्दना है यह दिव्य आरती सिद्धाश्रम में प्रतिदिन देवताओं द्वारा की जाती है यह दिव्य आरती ब्र० गोपालानन्द द्वारा ध्यान अनुभव में प्रज्ञा ज्ञान स्फुटित होने पर ज्ञान कराया गया था।

जो वरण करने योग्य है जो सभी देवों के ईश्वर भगवान शिव और रमापति विष्णु है, उन श्री सद्गुरु देव को मैं नमन करता हूँ। सद्गुरु तत्व वह सत्ता है जिसकी वन्दना एवं पूजा तथा दर्शन करने के लिए ऋषि मुनि देवी देवता लालायित रहा करते हैं क्योंकि यह सत्ता काल के परे है जो कि हदबन्दि के दायरे से काफी परे है। सद्गुरु देव भगवान के प्यारे बच्चे कितने भाग्यशाली हैं, क्योंकि पूर्व जन्म के संस्कार अच्छे होने पर ऐसे दिव्य (भूमा) महापुरुष का अवतार सद्ज्ञान का बोध कराने के लिए इस धरा पर हुआ करता है ऐसे घोर कलिकाल में जब मानव भीषण त्रासदी में विक्षिप्त एवं निराशा से कुण्ठित अपने को दीन–हीन समझकर अज्ञानता के मोह निद्रा में पड़ा कुलाचें भर रहा था इन्सानियत को भूलकर हैवानियत के उच्च शिखर पर विराजमान हो बैठा तब भगवान शंकर ने सद्गुरु सत्ता में आकर महाप्रभु श्री रामलाल जी दिव्य महापुरुष के रूप में अवतरित हुए तथा योग का डंका बजाकर प्रत्येक साधक एवं संस्कारित बच्चों को अन्तरमुखी बनाकर योग की ऊँची स्थिति ध्यान धारणा और समाधि सहजावस्था में प्रदान कर दी।

''काक नाड़ी संहिता'' में की गयी भविष्यवाणी के अनुसार योगयोगेश्वर महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज जी का इस युग में अवतारी पुरुषोत्तम के रूप में अवतार हुआ है आप भगवान श्री रामचन्द्र जी की मर्यादा श्री कृष्ण चन्द्र का योग ऐश्वर्य तथा भगवान सदाशिव की सद्गुरु सत्ता को लेकर एक परिपूर्ण परमब्रह्म सद्गुरु के रूप में अवतरित हुए हैं। आज से लगभग ४५ वर्ष पूर्व यानी १९६० मे जनवरी माह में महाप्रभु जी वृन्दावन आनन्दकन्द बांकेबिहारी मन्दिर के पास पीपल का एक वृक्ष दृष्टिगोचर हुआ और उसके नीचे पर्वतीय ढंग का टीला दिखाई दे रहा था, टीले के ऊपर एक दिव्य, शरीर धारी महामानव दिखाई दिया अपारजन समूह को देखकर ऐसा मालूम पड़ रहा था कि वृन्दावन की सारी जनता अपना अमूल्य कार्य छोड़कर उस टीले की ओर भागी जा रही थी, वहाँ पर हमारे आपके प्राणी मात्र के भाग्य विधाता महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज जी

विराजमान थे और उनके मुख मण्डल की आभा मानो सूर्य की रोशनी को फीकी कर रही हो और उनका दाहिना हाथ उठा हुआ था। और उनकी हथेली से तेज धारा प्रकाशित हो रही थी। साथ–ही–साथ उनके मुखार विन्द से भविष्यवाणी के रूप में कुछ शब्द भी निकल पड़े–

हे मानव– अपने कल्याण के लिए भगवत् चिन्तन करो क्योंकि आने वाला समय द्वन्द और विषमताओं से भरा रहेगा। अपने मानवीय कल्याण के लिए क्षण–क्षण पूर्व की परिस्थितियों से गुजरता हुआ समझो मेरा प्रादुर्भाव जगत को यह संदेश देने के लिए हुआ है। मेरी तरफ से मेरे दर्शन करने वाले मानव तुम्हारा कल्याण हुआ मेरे इस सन्देश को यथा सम्भव विश्व के कोने–कोने तक पहुँचा दो। इसके बाद वह ज्योति तीव्र गति से पीछे हटने लगी यमुना के तरल बालूका अपने चरण चिन्हों को छोड़ते हुए जल में पहुँचते–पहुँचते अदृश्य हो गये। ये महापुरुष परम योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी थे मानव दल स्तब्ध खड़ा का खड़ा ही रह गया।

महाप्रभु जी की भविष्य वाणी आज भी प्रासंगिक एवं सत्य है कलिकाल के घोर सत्ताप से यदि सद्गुरु देव भगवान के द्वारा बताये मार्ग पर चलकर एकनिष्ठ सद्गुरु भक्ति की जाय तो उनकी सत्ता का स्वतः बोध होने लगेगा।

महाप्रभु श्री रामलाल जी हर युग के अवतारी महापुरुष हैं तथा प्रत्येक युगों में बोध करा दिया करते हैं। यदि काफी आत्म मंथन करके देखा जाये तो सतयुग से लेकर कलियुग तक आपकी लीला रोमान्चकारी तथा हृदय स्पर्शी है।

1- "योग सन्देश नहीं, बल्कि योग ही दिव्य जीवन है"।

2- "योग कथनी में नहीं, अपितु कार्य रूप में परिणित करने की साधना है"।

3- यह सद्गुरु सत्ता साक्षात परमब्रह्मसत्ता है"।

4- यह ईश्वर से सीधा संवाद एवं साक्षात्कार कराने करने के क्रिया को योग कहते है।

5- "यह आर पार की लड़ाई कर सीधा परमात्मा से सम्बन्ध बनाती है"।

6- परोक्ष रूप से योग एक आत्म बल है और प्रत्यक्ष रूप से अन्तर जगत में प्रवेश कराने का माध्यम सद्गुरुसत्ता को है।

7- रूहानी परमानन्द तभी प्राप्त होगा जब सद्गुरुदेव के प्रति आत्मसमर्पण की भावना जागृत हो।

यस्य कृपांशात्सुविनष्ट पापाः
तृतीय नेत्रेण समुद्गतेन।
महाप्रकाशेन सुसिद्ध लोकं,
ईचेक्ष ब्राह्यो मुलखस्तमाश्रये।

अर्थात्– जिनके कृपाकण को प्राप्त करके समस्त पाप नष्ट हो जाने पर तीसरे नेत्र का उदय हो जाने और उससे प्रकट हुए महान प्रकाश के द्वारा योगीराज श्री मुलखराज जी महाराज ने प्रत्यक्षवत सिद्धलोक को देख लिया था मैं उस सर्वशक्तिमान प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की शरणग्रहण करता हूँ।

यस्य प्रसादात्पतितास्सुपावनाः
भवन्ति संसार सुतारणाः शिवाः।
योगीश्वराणां परमेश्वरं हरिम्,
श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।।

अर्थात् – जिनकी कृपा को पाकर अत्यन्त पतित प्राणी भी पर पवित्र होकर संसार को तारने की सामर्थ्य वाले और कल्याणकारी बन जाते हैं योगीश्वरों के भी ईश्वर उन प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की मैं चरण ग्रहण करता हूँ।

आनन्दकन्द योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के चरणों में यही प्रार्थना करते हैं अपनी करुण कृपा से मुझ जैसे पतितों को सद्बुद्धि ज्ञान देकर कृतार्थ करें तथा सुविज्ञ पाठकों से एवं लेखकों से अनुरोध है कि समस्त त्रुटियों को समझते हुए भी क्षमा करें।

एक निष्ठ गुरुभक्त हो। आत्मसर्मपण का हो जब भाव।
तब निश्चत ही ऐसे भक्तों को। भव पार लगा दे महाप्रभु श्री रामलाल।।

✿ ✿ ✿

कोई भी मनुष्य पूर्णतः दोषरहित नहीं है, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो स्वतः सम्पूर्ण हो अथवा जो स्वयं पर्याप्त बुद्धिमान हो। अतः हममें पारस्परिक सहनशीलता होनी चाहिये। हमें एक-दूसरे को आश्वासन, पारस्परिक सहायता, शिक्षा और उपदेश देते हुए मिलजुल कर उत्साहपूर्वक भगवान के मार्ग में चलना चाहिये।

मुझको गुरु से प्यार है

जगदीश राय बंसल 'अधम' (सोनीपत)

सागर से भी गहरा बन्दे, मुझ को गुरु से प्यार है।
चन्दा तारों से भी ऊँचा, मेरे गुरु का नाम है।। मुझ को गुरु से प्यार है।
प्रभु रामलाल से प्यार है, गुरु चन्द्र मोहन से प्यार है। मुझ को ....
मेरे गुरु जी योग योगेश्वर-सिद्धों के सरताज हैं
मेरे गुरु के हाथ बड़े हैं, मुझ को लाखों अरमान हैं
पं० देवी राम का लाड़ला, माँ धरती का लाल है। मुझको.......
साक्षात परब्रह्म गुरु जी, वेद पुराण के दाता हैं
बड़े दयालु जय कृपालु, मोक्ष धाम के विधाता हैं
भव भय मुक्त करें गुरु जी, गीता का यह सार है। मुझको......
गुरु चरणों का अमृत पी कर, ६८ तीर्थ बन जाते हैं
गुरु तत्व का ध्यान लगाकर, पाप सारे धुल जाते हैं
श्रद्धा सुमन से नमन करो, गुरु अखंड-मण्डलाकार हैं। मुझको..........
दिव्य ज्योति बखेरें जग में, अन्धकार को दूर करें
सोई पड़ी है शक्ति जिसकी, उसमें शक्ति संचार करें
आ जाए जब लहर शिवा में, अधम का बेड़ा पार है। मुझको............

गुरु देव सुनो अर्ज मेरी, हम शरण आपकी आये हैं
श्रद्धा सुमन श्री चरणों में, हम अर्पित करने आए हैं।
गुरुदेव हमारे सिर ऊपर तेरी दया का हाथ रहे
हे नाथ ! हम अनाथ न हो, तू सदा हमारे साथ रहे
जिन्दगी के कदमों में दाता, लाखों कष्ट उठाए हैं। टेक
गुरु दे दो हमको इक शक्ति, चरणों में हमारा ध्यान रहे
श्रद्धा बढ़ा दो तन मन में, दौलत का ना गुमान रहे
अब काया कल्प करो गुरु जी, जितने भी दोष समाए हैं। टेक
हो साक्षात परब्रह्म तुम्हीं, वेद पुराण के दाता हो
हे कृपालु दीन दयालु मुक्ति के तुम दाता हो
बन्धन मुक्त करो गुरु जी, ये आस जिगत में लाए हैं
ना चाहत मथुरा काशी की, न चाहत चारों धामों की
६८ तीर्थ श्री चरणों, जो मिल जाए धूल संवाई की
शिव राम कृष्ण गोविन्द तुम हो, गुरु चन्द्रमोहन कहलाए हैं। टेक

✿ ✿ ✿

बहन रामकली, अलौकिक सुरक्षा

प्रेषक : **केशव देव उपाध्याय**, वाराणसी

हरियाणा प्रान्त का लाड़वा क्षेत्र जो कुरूक्षेत्र जिले में है, आराध्यदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का विशेष कृपा पात्र क्षेत्र रहा है। पहला नौमी के पूर्व फरवरी मार्च में तथा दूसरा श्री गुरुपूर्णिमा के बाद जुलाई एवं अगस्त में यह क्षेत्र आराध्यदेव जी की अहैतुकी कृपाओं से पूर्ण रूप से आच्छादित है एवं आज भी इस क्षेत्र पर उससे अधिक कृपायें हो रही हैं जितनी अनाथ नाथ के स्थूल से रहने पर हुआ करती थीं। लाडवा के पास के एक गाँव का नाम बन्डौदा है। इस परिवार के एक ठाकुर साहब ने सन् सत्तर के दशक में गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से विधिवत योग दीक्षा ग्रहण की। कालान्तर में इन्हें सन्तानें हुई एवं वातावरण एवं पूर्व संस्कारवश उन सबों के मनोभाव भी पूर्ण आध्यात्मिक एवं भगवत् प्रेमभाव से लबालब भरे हुए हैं। ठाकुर साहब का जीवन चक्र पूरा हुआ एवं उनकी जीवन–ज्योति अनाथ--नाथ के अखण्ड ज्योति में समाहित हो गई। इस समय इनके परिवार में ठाकुर साहब की विधवा श्रीमती रामकली देवी उनके तीनों पुत्र एवं पुत्र वधुयें जीवन यापन कर रहे हैं। सन् दो हजार में इस परिवार पर विपत्ति का पहाड़ आकर गिर पड़ा, जिससे यह परिवार महान कष्ट में पड़ गया, परन्तु उससे पार पाने का रास्ता समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय ? अहैतुकी कृपा सागर श्री प्रभुजी ने किस अनोखे प्रकार से इस परिवार को कष्ट की महान पीड़ा से खींचकर सामान्य स्थिति में ला दिया। यही समझना एवं समझाने का प्रयास करना इस कृपा चरित्र का मुख्य अंश है।

यह कुदरती देन है कि पंजाब एवं हरियाणा के प्राणी परिश्रमी एवं देश के अन्य प्रांतों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक सत्यवादी होते हैं। इन्हीं दो कारणों के कारण ये अच्छी स्थिति में हैं। यद्यपि इनके पास नकद रुपयों की बहुत बड़ी थाती नहीं होती परन्तु खान–पान में इनकी स्थिति बहुत ही अच्छी कही जा सकती है। ठाकुर साहब का परिवार भी इसी श्रेणी का परिवार है। भैंसों–गायों के अलावा खेती करने के लिये ट्रेक्टर, ट्राली यानि संक्षेप में यह कि खेती–बारी का सिलसिला काफी फैला हुआ है। वैसे तो तीनों लड़के स्वस्थ्य एवं सुन्दर हैं परन्तु इनका बीच वाला लड़का गठीले बदन का मेहनतकश एवं बहुत ही मृदुभाषी प्राणी है। उन्नीस सौ सन्तानवे में इन्होंने गाँव के ही एक आदमी को अपनी खेती सम्भालने के लिये नौकरी पर रखा। नौकर तो काफी मेहनती एवं ईमानदार था, परन्तु शराब पीने की उसे गलत आदत लड़कपन से ही लग गई थी। इस परिवार के यहाँ नौकरी करने के बाद उसे पैसा कमाने का अच्छा मौका लगा एवं उसकी शराब पीने की आदत काफी बढ़ गई। खेती का कार्य तो वह इतना मेहनत से करता था कि उसका जोड़ीदार मिलना मुश्किल ही था, आवश्यकतानुसार दिन–रात धूप–छाँव सदैव खेती का

इनका काम सम्भाल लिया था, परन्तु उसी के साथ शराब से ज्यादा प्यार करने लगा।

शराब की अत्यधिक मात्रा पीने के कारण सन् दो हजार में मई के महीने में वह ट्रेक्टर चलाकर वापस आ रहा था। नशे की पराकाष्ठा पर था बेहोश होकर गिर पड़ा एवं गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। लेकिन लौकिक दृष्टि से उसकी मृत्यु का एक मात्र मुख्य कारण उसकी नशाखोरी शराब पीना ही था, परन्तु यह मायावी दुनियाँ बहुरंगी है। वह किसी को भी बेदाग नहीं छोड़ती। सब पर दाग लगा ही देती है। इस परिवार के साथ भी वही हुआ एवं इनके पट्टीदारों एवं इनके परिवार से द्वेष भावना रखने वालों ने इसे बढ़ाकर यह प्रमाणित करना चाहा, तत्काल देखा जाय तो उन्हें सफलता भी मिल गई, कि इस मजदूर की मृत्यु का कारण ठाकुर साहब का परिवार ही है। जिसके यहाँ रहकर वह अपनी नौकरी करता था। गाँव वालों ने सम्बन्धित थाने पर इसकी सूचना विद्युत गति से पहुँचा दी। जैसा कि विदित है। पुलिस महकमा बड़ा विचित्र विभाग है। यह गलत आदमियों को पकड़ने में आना-कानी करते हुए महीनों का समय लगाता है परन्तु सही आदमियों को पकड़कर परेशान करने एवं पैसा ऐंठने में एक मिनट की भी देर नहीं करता, यही हुआ।

पुलिस वालों का एक दल, जिसमें एक उपनिरीक्षक तथा तीन सिपाही थे, इनके घर सायंकाल पाँच बजे आये एवं खेती-बारी का मुख्य रूप से कार्य करने वाले या यह कहा जाय कि सबसे जिम्मेदार व्यक्ति इनके मझले लड़के को थाने पर लेकर गये एवं थप्पड़ मारकर हवालात में बन्द कर दिया। उन सबों ने उस लड़के को काफी डराया एवं धमकाया तथा उसके परिवार वालों से कहा कि इस पर दफा ३०२ अर्थात् मजदूर को जान से मारने का मुकदमा कायम किया जायेगा। भरा-पूरा परिवार विकट मुसीबत में फँस गया। पुलिस वालों ने अपने दलालों से खबर भिजवाई कि यदि मामले को रफा-दफा करवाना चाहते हो तो अमुक धनराशि लेकर थानेदार साहब से मिल लें, वरना मौत की सजा तो निश्चित हो ही जायेगी। न तो परिवार के पास उतना नकद पैसा था, जितनी माँग की जा रही थी एवं न ही कोई सिफारिश करने वाला ही था। परिवार के सभी लोग काफी दुखित थे एवं अपने को असहाय महसूस कर रहे थे। बच्चों को भी जो कष्ट हो रहा था, वह लेखनी से परे है।

श्री प्रभु जी की अहैतुकी कृपा है कि महान कष्ट के समय अनाथ-नाथ, आराध्यदेव जी की याद अनायास ही आ जाती है। अपने को सब प्रकार से मजबूर देखकर उस विधवा माँ की समझ में यह बात स्पष्ट रूप से घर कर गई कि इस समय गुरुदेव ही हमारी सहायता कर सकते हैं। सायंकाल करीब ७ बजे का समय था उसने स्नान करके अपने पूरे कपड़े बदले एवं योगेश्वर द्वय (दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) के दिव्य स्वरूपों, नम आँखों एवं गमगीन आवाजों से आरती पूजन किया। आरती पूजन करने के बाद उसने योगेश्वर द्वय के स्वरूप के सामने शुद्ध देशी घी की अखण्ड ज्योति जलाई एवं यह दृढ़ निश्चय कर मंत्र-जाप करने बैठ गई

कि यह अखण्ड ज्योति तब–तक जलती रहेगी जब तक मेरा लड़का निर्दोष पुलिस वालों के कब्जे से वापस नहीं आ जाता। उसने यह भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब तक दिव्य ज्योति जलती रहेगी मैं अपने गुरुमंत्र का जाप करती रहूँगी। साथ ही उसने यह भी इरादा पक्का कर लिया कि मैं पानी के अलावा कुछ भी ग्रहण नही करूँगी। उस विधवा श्रीमती रामकली देवी ने अखण्ड ज्योति जलाकर योगेश्वर के सामने रख दिया एवं अपने गुरुमंत्र का अनवरत जप करना आरम्भ किया।

यह कहना अतिशियोक्ति नहीं होगी कि किसी भी असहाय प्राणी की मौन प्रार्थना सुनने में हमारे आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज दक्ष हैं। जिसने भी उनको पुकारा वे तत्काल उसी की प्रार्थना पर उसके पास पहुँचकर उसका कष्ट निवारण कर दिया करते हैं। यह बात अलग है कि उस प्राणी को उसका स्पष्ट बोध हो न हो। मौन प्रार्थना श्री गुरुदेव कैसे सुनते हैं, इस प्रसंग पर एक कथानक याद आ रहा है जो भाई–बहनों के सामने उजागर हुआ।

पूर्वांचल या पूर्वी उत्तर प्रदेश का अपना यौगिक प्रचार कार्यक्रम अनाथ–नाथ ने आदरणीय भाई श्री महेन्द्र नारायण सिंह को निमित्त बनाकर मिर्जापुर जनपद के अन्तर्गत बरैनी ग्राम से आरम्भ किया था। आदरणीय भाई महेन्द्र नारायण जी को योगी की ऊँची स्थिति प्राप्त थी। कालांतर में यह प्रोग्राम उसी कस्बे से सटे कछवा बाजार मे आदरणीय भाई बाबू स्वामी प्रसाद सिंह जी (भूतपूर्व टाऊन एरिया अध्यक्ष) के यहाँ मनाया जाने लगा जो लगभग प्रत्येक साल श्री गुरुदेव भगवान के लीलावसान तक चलता रहा।

कछवा बाजार के कार्यक्रम में जो सात दिनों का था, एक जिज्ञासु साधक ने आराध्यदेव जी से प्रणाम कर प्रश्न किया, "प्रभु जी ! श्री सत्गुरु महाराज या ईश्वर को कष्ट के समय ऊँच्च स्वर में पुकारना ठीक होता है या मौन प्रार्थना सर्व शक्तिमान के पास पहुँच जाती है"। हमारे आराध्यदेव जगतनियंता योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने उस जिज्ञासु को अपने मुखारबिन्द से यह रहस्य बतलाया था कि लल्ला ! ऊँचे स्वर में शिष्य या साधक द्वारा की गई प्रार्थना गुरुदेव को उतनी ही आवाज में सुनाई देती है। परन्तु मौन प्रार्थना नगाड़े की ध्वनि (अर्थात् बहुत ऊँची आवाज) में सुनाई देती है। अतः साध क या शिष्य को अपने ईष्ट से मौन प्रार्थना करना ही सर्वोत्तम है। अब उस विधवा गुरु बहन श्रीमती रामकली देवी के पास चला जाये जो योगेश्वर द्वय के सामने अखण्ड ज्योति जलाकर अपने गुरुमंत्र का अनवरत जाप कर रही है। वह स्वस्थी कासन् जाप कर रही थी। पैर में पीड़ा होने पर खड़ी होकर मंत्र जप रही थी, थक जाने पर चित्त लेटकर मंत्र जाप कर रही थी। उसने सांय सात बजे मंत्र जाप करना आरम्भ किया एवं प्रातः साढ़े पाँच बजे तक मंत्र जाप करती रहीं। ठीक साढ़े पाँच बजे पुलिस थाने का इन्चार्ज हेड दरोगा उस लड़के को अपने साथ आगे वाली सीट पर बिठाकर लाया। उस जीप में पाँच सिपाही भी थे जो जीप के पीछे बैठकर आये थे। उस बालक को उसके घर पर उतारकर दरोगा

ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि भाई हमसे गलती हो गई हमने तुम्हारे साथ जो दुर्व्यवहार किया है उसके लिए हमें क्षमा कर दो, मेरी बार–बार आपसे यही प्रार्थना है। उस दरोगा जी ने एवं साथ के सभी सिपाहिओं ने कई बार हाथ जोड़कर क्षमा याचना की। जब तक उसने अपने मुख से यह नहीं कह दिया कि मैंने आप लोगों को क्षमा कर दिया तब तक वे लोग हाथ जोड़कर खड़े ही रहे। उसके द्वारा अपराध क्षमा किए जाने की बात सुनकर पुलिस वाले जीप से अपने मुख्यालय थाने गये। उन लोगों को विदा करके इस बालक ने तत्काल जाकर योगेश्वर द्वय के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। एवं उसके बाद बैठकर काफी समय तक रोता रहा। माँ बालक की ऐसी दशा देखकर काफी दुःखी एवं चिन्तित थी, उसकी रूलाई बंद होने पर उसने कहा, "बेटा ! क्या पुलिस वालों ने तुम्हें ज्यादा मारापीटा है इसलिए रो रहे हो ? उसने कहा कि नहीं माता जी मैं तो श्री गुरुदेव की कृपा को याद कर रो रहा हूँ, कि बिना किसी सिफारिश एवं रूपयों के श्री गुरुजी ने हमें ऐसा बचा लिया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

पाठकों के मन में इस बात को समझने की जिज्ञासा होगी कि पुलिस वालों के साथ क्या घटना घटित हो गयी कि वे इतने मेहरबान हो गये। हुआ यह कि इधर विधवा श्रीमती रामकली देवी ने अखण्ड ज्योति जलाकर जप करना आरम्भ किया एवं उधर श्री गुरुदेव ने अपने शिष्य को छुड़ाने का कार्य आरम्भ कर दिया। रात्रि ८:३० के बाद थानेदार के नाम से फोन आना आरम्भ हो गया। सबसे पहले सी. ओ. का फोन आया कि अमुक लड़के को जिसको तुमने अपने हवालात में बंद कर रखा है उसे तत्काल छोड़ दो। उसके आधे घण्टे के बाद कोतवाल का फोन आया कि इस गाँव के अमुख लड़के को जिसे तुमने लॉकअप में बंद कर रखा है तत्काल छोड़ दो। वह बिल्कुल निर्दोष है। उसके आधे घण्टे बाद एस० एस० पी० का फोन आया कि अमुक गाँव के अमुक लड़के को जिसको तुमने अपने थाने की हवालात में बंद कर रखा है उसे तत्काल छोड़ दो। वह बिल्कुल निर्दोष है। उसके आधे घण्टे बाद कैबिनेट गृहमंत्री का एवं उसके बाद मुख्यमंत्री का फोन उसी निर्देश एवं आदेश के साथ आया।

यद्यपि थानाध्यक्ष ने साढ़े सात बजे लॉक–अप में बंदकर अपने सन्तरी से कह दिया था कि विभाग के किसी अधिकारी का फोन आये तभी हमसे बात कराना, वरना कह देना कि गश्त (रात्रि की भ्रमणकालीन ड्यूटी) पर गये हुये हैं, सवेरे बात होगी। परन्तु यहाँ ठीक उल्टा हुआ। किसी बाहरी व्यक्ति का फोन आया ही नहीं। सभी फोन जितने भी आये उसके विभागीय उच्च अधिकारियों के ही आये। साथ ही प्रत्येक अधिकारी केवल थानाध्यक्ष से ही बात करना चाहता था एवं किया। बेचारा थानाध्यक्ष पूरी रात परेशान रहा। एक अधिकारी का फोन अटेन्ड करके बिस्तर पर जाता था, अभी करवट भी नहीं बदलता था कि दूसरे उससे उच्च अधिकारी का फोन आ जाता था। रात्रि में करीब दो बार उसने जाकर हवालात में बन्द हमारे इस प्रभु प्यारे भाई से पूछा, "तुम्हारा पुलिस विभाग में

किसको–किससे परिचय है, और यदि परिचय है तो तुमने हमसे पहले क्यों नहीं बतलाया ?"

हमारी बहन विधवा माँ श्री रामकली देवी जी का यह पुत्र थानाध्यक्ष से प्रत्येक बार यही कहता कि साहब, "हमारा या हमारे परिवार के किसी सदस्य का पुलिस विभाग में किसी से कोई परिचय नहीं है। इतना जरूर है कि उसके मरने में मेरा कोई कसूर नहीं है।

बेचारा थानाध्यक्ष बड़े ही असमंजस में था। उसे लगता था कि यह लड़का सही बोल रहा है। यदि यह सही बोल रहा है तो दलाल के माध्यम से मुझे इसे छोड़ने पर पचास हजार से एक लाख के मध्य रूपया मिल जायेगा। दूसरी तरफ सोचता था कि विभागीय अधिकारियों को क्या हो गया है एक बालक छुड़ाने पर पूरा पुलिस विभाग लगा है। रात भर बेचारा जागता ही रहा। ठीक पौने पाँच बजे प्रातः केन्द्रीय गृहमन्त्री का फोन आया व एक सिपाही द्वारा थानाध्यक्ष को फोन के पास बुलाया गया। "थानाध्यक्ष अपना बेल्ट, बैनर एवं टोपी ठीक ठाक कर सम्हालते हुए फोन उठाये एवं हलो सर ! हलो सर कर रहे थे तब तक केन्द्रीय गृह मन्त्री ने कहा, "अमुक लड़के को जिसको तुमने यह जानते हुए कि वह निर्दोष है, हवालात में बन्द कर रखा है, पाँच बजे के पहले छोड़ कर उसे उसके घर पहुँचा दो।"

थानाध्यक्ष की नौकरी मात्र दो साल शेष रह गई थी। अब तक की पूरी नौकरी में उसकी यह पहली घटना थी कि आरोपी व्यक्ति कह रहा है कि उसका कोई अपराध नहीं है एवं उसकी विभाग में किसी से जान पहचान नहीं है एवं विभाग के सभी अधिकारी उसे छुड़ाने पर लगे हुए हैं। आखिर बात क्या है ? उसके कलुषित एवं सांसारिक मन ने सोचा कि हो सकता है कि यह कोई सोची समझी चाल हो। अब तक तो केवल अधिकारियों के ही फोन इसे छुड़ाने के लिये आये हैं क्यों न मैं एक बार स्वयं फोन करके जिले के मुख्य पुलिस अधिकारी एस० एस० पी० से स्थिति स्पष्ट कर लूँ। मन में यही विचार पक्का कर प्रातःकाल के पाँच बजने में पाँच मिनट बाकी थे, तो उसने एस० एस० पी० को फोन करके कहा, "हैलो सर, मुझे क्षमा करते हुये यह बताने की कृपा करें कि अमुक बालक को छोड़ दिया जाय"।

उधर से एस० एस० पी० ने तत्काल कहा, "अबे हरामजादे, सुअर के बच्चे, अभी तक उसे छोड़ा नहीं है। यदि वर्दी एवं नौकरी रखना चाहते हो तो तत्काल उसे इज्जत के साथ जीप में आगे बिठाकर उसके घर छोड़ आओ नहीं तो प्रातःकाल मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ दूँगा। हराम का पैसा खाते–खाते तुम्हारा शरीर तो मोटा हो ही गया है, तुम्हारी बुद्धि समाप्त हो गई है, तुम पागल हो गये हो। कल मैं तुम्हें अपने अधिकार से पागल खाने में भरती करा दूँगा। तब तुम्हारी अक्ल ठिकाने लग जायेगी।" बेचारा दरोगा जी सर, यस सर, कहता रहा एवं जाड़े के दिन में पसीने से लथपथ हो गया। धन्य है ऐसे गुरुदेव एवं धन्य है उनकी ऐसी अहैतुकी कृपा।। इति।।

✿ ✿ ✿

जीवन में सत्संग का प्रभाव

लेखक - **कृष्ण कुमार पाण्डे गोरखपुर**

जीव चौरासी लाख योनियों से भटकते हुए कदाचित किसी पुण्य संस्कार के कारण मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। मनुष्य योनि को कर्म योनि मानकर अन्य योनियों से श्रेष्ठ माना गया है। इस श्रेष्ठ मानव जीवन को श्रेष्ठतर बनाना व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। हमारे परम पूज्य प्रातः स्मरणीय सद्गुरुदेव भगवान का सदैव यह जाग्रत उपदेश रहा है कि इतनी साधना करो जिससे मनुष्य जन्म पुनः निश्चित हो जाय। गुरु की कृपा महान होती है। एक क्षण में अद्भुत परिवर्तन कर देती है।

जीवन जीने की विशिष्ट कला में सतसंग का विशेष महत्व है। इसलिए सतसंग जीवन की अनिवार्य चर्या होनी चाहिए। सत्संग अर्थात् सज्जनों का संग होना है। अब प्रश्न उठता है, सज्जन कौन है ? सज्जन की परिभाषा के अन्तर्गत सदाचरण करने वाले व्यक्ति से लेकर सद्ग्रन्थों तक है। ऐसे सद्ग्रन्थों की कोटि में वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, गीता, रामचरित मानस आदि हैं। संतों एवं नीतिकार के साहित्य भी इसी कोटि के हैं। सत्संग की महिमा का अचूक प्रभाव है। यह क्षण भर में ही व्यक्ति में परिवर्तन ला देता है। सत्संग हृदय के परिष्कार का साधन है। इससे मन का विकार समाप्त होता है। मन में स्थिरता एवं एकाग्रता आती है। बिना एकाग्रता के कोई कार्य व्यवस्थित रूप से हो नहीं पाता है। यथा– **''अव्यवस्थित चित्तानां किमपि कार्यम् न सिद्धयति''**।

सतसंग से जीवन के व्यावहारिक पहलू पर तीव्रता से प्रभाव दिखता है। व्यक्ति में समनिष्ठता, प्रवरता एवं बोधगम्यता स्वतः प्रतिभासित होता है।

योग से भी हृदय का परिष्कार होता है। इसमें अभ्यास एवं वैराग्य के माध्यम से परिष्कार होता है। अभ्यास से मन में दृढ़ता आती है। इसलिए अभ्यास किसी भी साधक एवं सामाजिक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। वैराग्य से मन में किसी वस्तु के प्रति लोभ की प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न होती है। ईशावास्योपनिषद में कहा गया है कि – **''तेन त्यक्तेन भुज्जीथाः''** अर्थात् किसी वस्तु का त्याग पूर्वक भोग भी वैराग्य की श्रेणी में आता है। त्यागपूर्वक उपभोग का तात्पर्य व्यक्ति की जितनी आवश्यकता है, मात्र उतने को ही ग्रहण करने की प्रवृत्ति रखनी चाहिए। क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति के होने से व्यक्ति में किसी भी वस्तु के प्रति विशेष स्पृहा नहीं रहती है। व्यक्ति थोड़े में ही संतुष्ट रहता है।

तुलसीदास जी ने सतसंग के प्रभाव के बारे में रामचरितमानस में कहा है कि–**''नारद जानऊ संग प्रभाऊ''** अर्थात् नारद जी ने संग के प्रभाव को जान लिया है। इसीलिए शायद व कभी भी भगवान के सानिध्य को छोड़ना नहीं चाहते हैं। संग का प्रभाव था कि

बाल्मीक जी में अद्भुत परिवर्तन हुआ। जिन्होंने कालान्तर में चलकर "रामायण" जैसे दिव्य ग्रन्थ की रचना की।

व्यक्ति के जीवन में दो शक्तियाँ क्रमशः आसुरी शक्ति तथा दैवी शक्ति कालक्रमानुसार आती रहती हैं। इसमें आसुरी शक्ति व्यक्ति को कान्तिहीन बना देती है। जबकि दैवी शक्तियाँ व्यक्ति को कान्ति युक्त कर देती है। जीवन को कान्तियुक्त बनाना ही व्यक्ति का श्रेय होना चाहिए। यद्यपि प्रत्येक सतर्क व्यक्ति दैवी शक्ति की ही आकांक्षा रखता है। लेकिन व्यक्ति के अपने कर्म संस्कार होते हैं। वे संस्कार बन्धन में जकड़ते रहते हैं। इसीलिए उनसे मुक्त होना प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। हमारे सद्गुरुदेव भगवान मन्त्रजप के लिए सदैव उपदेश करते रहते थे। क्योंकि उससे पाप कर्म दग्ध होते हैं पाप कर्म के न होने तथा पाप से बचने का आसान उपाय सतसंग है।

तुलसीदास जी ने जोरदार शब्दों में निर्देशित किया है कि–

एक धरी आधौधरी आधौ में पुनिआध।
तुलसी संगत साधु की हरै कोटि अपराध।।

अर्थात् यदि एक धरी के आधे में भी साधु की संगति मिल गयी तो करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। रामचरित मानस के प्रारम्भ में ही वे संतों के संग के प्रभाव का वर्णन किये हैं। उसका कारण यह है कि स्वयं गोस्वामी जी को हनुमान के साथ सतसंग करने का परिणाम मानस ग्रन्थ है।

यहाँ पर गोस्वामी जी के उक्त दोहे को उन्ही के शब्दों में परिभाषित करना समीचीन होगा। मानस के बालकाण्ड में संतों के चरित्र के बारे में बताते हैं कि–

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस विसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुःख पराछिद्र दुरावा।
वंदनीय जोहि जग जस पावा।।

अर्थात् यह कि संतों का चरित्र कपास की तरह धवल होता है। यद्यपि उसका फल नीरस विशद तथा गुणमय होता है। तात्पर्य यह कि कपास का फल नीरस होता है, संतों का चरित्र भी विषयासक्ति रहित होता है इसलिए वे नीरस होते हैं। कपास में विद्यमान रूई धवल होता है संतों का हृदय भी अज्ञान एवं पाप रूपी अन्धकार से रहित होता है। इसलिए वह विषाद है। कपास में तन्तु होते हैं उसी प्रकार संतों का चरित्र भी सद्गुणों का भण्डार होता है। इस कारण गुणमय है। जो संत स्वयं कपास की तरह दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढँकता है जिसके कारण उसे जगत में वन्दनीय यश प्राप्त होता है। पुनः कहा–

मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू।।

अर्थात् संत का समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत में चलता फिरता तीर्थराज प्रयाग है। पुनः तीर्थराज का परिणाम बताते हैं--

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।

अर्थात् वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल को प्रदान करने वाला है तथा उसका प्रभाव भी प्रत्यक्ष है।

सतसंग की ऐसी विचित्र महिमा है कि कौआ, कोयल तथा बगुला हंस हो जाता है। सतसंग से निश्चय ही हृदय का परिष्कार होकर व्यक्ति में परिवर्तन हो जाता है। क्योंकि गणितीय सिद्धान्त के अनुसार परिणाम यथार्थ एवं सत्य निश्चित हैं।

आज वर्तमान भागदौड़ के जीवन में व्यक्ति शक्ति एवं ऐश्वर्य को ही सब कुछ मानकर उसी में रम गया है। किन्तु उसकी अन्तिम परिणति पर दृष्टिपात करें तो अंततः ईश्वर प्रदत्त वाञ्छित वस्तु ही प्राप्त होती है। हमारा समस्त प्रयत्न असफल हो जाता है। व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं पात्रता के अनुसार फल प्राप्त होता है। अधिक की लालसा से तृष्णा का जन्म होता है। तृष्णा कभी भी शान्त न होने वाली है। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि -- **"न जातु कामान् हविष्यान् न हविष्यात् शाम्यति"**।

सतसंग की महिमा अपार है। जिस प्रकार से भौतिक पदार्थ की उपलब्धि पुरुषार्थ एवं ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है। उसी प्रकार आध्यात्मिक उपलब्धि का साधन सतसंग है। आज कलिकाल में विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। उसका भी समाधान सतसंग से ही सकता है। सतसंग निश्चित रूप से मन में उठने वाली असद्वृत्तियों पर प्रभाव डालती है। जैसे-जैसे हमारी असद्वृत्तियाँ समाप्त होती जायेंगी, धीरे-धीरे मन में उठने वाली कामनायें समाप्त होने लगती हैं। श्री सिद्धगुफा आश्रम सवाई में प्रातः स्मरणीय परम पूज्य गुरुदेव जी सान्ध्य बेला में इसीलिए समुदाय से भजन आदि करवाते रहते थे। आदरणीय बहन उमा जी द्वारा महाप्रभु से संबंधित चरित्रों का गायन हृदय पर एक विशेष प्रभाव डालते थे। जिससे मन आह्लादित हो उठता था। उस काल में हृदय में सद्विचार स्वतः स्फूर्त होते रहते थे।

इसीलिए सतसंग को जीवन का प्रमुख हिस्सा मानकर अवश्य ही करने योग्य है। सद्ग्रन्थों का पाठ भी सतसंग का एक उपाय है। किन्तु इसमें नियमानुवर्तिता का प्रयोग आवश्यक है। सद्गुरुदेव भगवान भी सदैव मंत्र जप के बारे में उपदेशित करते रहते थे। आज के युग में उपर्युक्त का पालन नितान्त उपयोगी है।

✿ ✿ ✿

"युगाचार्य भगवान् कृष्ण की दृष्टि में यज्ञ"

–डा. जयनारायण राय (आजमगढ़)

महाभारत काल में वेद जो भगवान् के मुख से निःश्वसित है, के अर्थ का अनर्थ हो रहा था। भगवान कृष्ण धरा पर युगाचार्य के रूप में अवतरित होकर गीता के माध्यम से वेदों का गायन करते हैं। गायन में स्वानुभूति है। इसीलिये गीता भगवान कृष्ण की अनुभूति का उच्छ्वास है। वेदों पर अनेक भाष्य और टीकायें उपलब्ध हैं किन्तु गीता वेदों की सर्वोत्तम टीका है।

महाभारतकालीन समाज में यज्ञ की परम्परा में विकृतियां आ गयी थीं। उस समय यज्ञ सम्पन्न करना साधारण जनता के लिये संभव नहीं था। आम धारणा थी कि यज्ञ सम्पन्न करने वाला ही व्यक्ति धन धान्य प्राप्त करने और मृत्यु के बाद स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी होता है। ऐसी दशा में निर्धन व्यक्ति व्यय साध्य यज्ञ को न करने के कारण देवताओं को प्रसन्न नहीं कर सकता था। तात्पर्य यह कि देवताओं की कृपा से वह वंचित रहेगा। उस युग में यज्ञ की मान्यता थी। श्री कृष्ण भगवान ने "**यज्ञ**" शब्द को लिया किन्तु श्री कृष्ण भगवान ने युगाचार्य के रूप में "**यज्ञ**" शब्द को नया अर्थ प्रदान किया। जो युगाचार्य होते हैं, वे युग की मान्यता के अनुरूप एक नया मार्ग, एक नया उपाय जनता के सामने रखते हैं। जैसे मुगलकालीन सोने का सिक्का बादशाही सत्ता बदलते ही अंग्रेजी सिक्का मुहर लगते ही चलन में आ गया। भले ही मुगलकालीन सिक्का सोने का रहा हो। श्री कृष्ण भगवान ने यज्ञ रूपी सिक्के को गलाकर युग के अनुरूप यज्ञ का नया स्वरूप प्रदान किया। पहले यज्ञ का अर्थ आहुतियों और बलि से लगाया जाता था। यज्ञ के नाम पर पशु–बलि का बड़ा जोर था।

श्री कृष्ण भगवान ने इस कुरीति से जनता को निजात दिया। श्री कृष्ण भगवान ने यज्ञ का विरोध किया। प्रसंग आता है कि नन्द बाबा इन्द्र की पूजा के लिये यज्ञ का विधान करते थे। इस प्रथा का विरोध श्री कृष्ण भगवान ने किया। इस पर नन्द बाबा कहते है कि यदि इन्द्र को यज्ञ आहुति का भाग नहीं दिया जायगा तो इन्द्र कुपित होकर धन–जन का नाश कर देंगे। यही उचित है कि इस परम्परा को न तोड़ा जाय। परन्तु श्री कृष्ण भगवान इस परम्परा के विरोध में खड़े होते हैं और कहते है कि जो इन्द्र दिखाई नहीं देता है, उसकी पूजा क्यों की जाय ? इन्द्र की पूजा करने से अच्छा है, गोवर्धन की पूजा की जाये। गोवर्धन हमारी आँखों से दीखता है और गायों को चारा देता है। और हमारी भूमि पर वर्षा कराता है। इसलिये हम सभी मिलकर गोवर्धन की पूजा करें। इन्द्र–पूजा की परम्परा पर कुठाराघात कर श्री कृष्ण भगवान गोवर्धन–पूजा का आयोजन करते हैं। इससे यही ध्वनित होता है कि श्री कृष्ण भगवान क्रान्तिकारी महापुरुष और युगाचार्य हैं। वे युग के अनुरूप एक नया मार्ग दिखाते हैं और गीता के रूप में अपना अमर उपदेश प्रदान कर जाते हैं।

✿ ✿ ✿

महाभारतकालीन समाज के उद्धारक महर्षि व्यास

डा. जयनारायण राय, आजमगढ़

सदगुरुओं के पूजन एवं चिन्तन का पावन पर्व गुरुपूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। इसे व्यास-पूजा से भी जाना जाता है। इसके आदि स्रोत, महर्षि व्यास जी हैं। इस व्यास-पीठ परम्परा में अनेक व्यास हुये हैं। ऐसी गुरु-परम्परा के संचालक महर्षि व्यास जी के सम्बन्ध में दृष्टिपात करना समीचीन है।

महर्षि व्यास दो नाम से प्रख्यात हैं– १. कृष्ण द्वैपायन व्यास (श्याम वर्ण होने से कृष्ण तथा द्वीप में जन्म होने से द्वैपायन) २. बादरायण व्यास (बदरीवन में तपस्या करने से बादरायण)।

वेद का व्यसन अर्थात् वेद का विभाजन करने के कारण व्यास नाम से विख्यात हुये। 'व्यास' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है विभाजन और विस्तार। श्री कृष्ण द्वैपायन ने वेदों को विभाजित भी किया और विस्तारित भी।

महर्षि व्यास रचित महाभारत के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में लोगों की आस्था धर्म और ईश्वर से हटकर भौतिकता की ओर बढ़ रही थी, विज्ञान उस समय अपने उत्कर्ष पर था। यह बात दुर्योधन, दुःशासन आदि के चरित्र अवलोकन से स्पष्ट होता है। ऐसे समय महर्षि व्यास जी ने धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिये आप्राण चेष्टा की। इस दिशा में महर्षि व्यास ने सबसे पहले वेद को चार भागों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं सामवेद) में विभाजित किया। क्योंकि वेद का वृहत् भार एक ही परिवार को उठाना कष्ट साध्य था। यह भी डर था कि यदि वह परिवार अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो गया, तो वेद की परम्परा लुप्त हो जाने का भय था। इसलिये महर्षि व्यास जी ने वेद के विभाजित एक-एक शाखा अपने एक-एक ऋषि को दे दी। इस महान कार्य को सम्पन्न करने के कारण ही वे व्यास कहलाये।

महाभारत काल में ऊँच, नीच, वर्ण व्यवस्था में संकीर्णता आ गयी थी। शूद्र और स्त्रियों को वेदाध्ययन वर्जित था। जन सामान्य में अच्छे संस्कार लाने और शिक्षा प्रसार करने के लिये महाभारत और पुराणों की रचना कर महर्षि व्यास ने स्मृतिशास्त्रों की परम्परा का शुभारम्भ किया। इनमें श्रुतियों यानी वेदों में वर्णित गूढ़ तत्वों को सरल ढंग से प्रस्तुत किया। क्योंकि महाभारत में वर्णन आता है–

स्त्री शूद्र द्विज बन्धुनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।।

अर्थात् स्त्री, शूद्र और विधि पूर्वक उपनयन-संस्कार से शून्य द्विज लोग वेदों को

पढ़–गुन नहीं सकते, इसलिये महर्षि व्यास ने कृपा कर महाभारत की रचना की।

इसी भावना से प्रेरित हो महर्षि व्यास ने भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण की वाणी जन सामान्य को उपलब्ध करायी। यही कारण है कि गीता में जहाँ–जहाँ उपनिषदों के श्लोक आये हैं, वहाँ महर्षि व्यास ने उन श्लोकों को किंचित परिवर्तित कर दिया, जिससे उनका श्रुति–रूप कायम न रह सके और वेद–अनधिकारियों को भी उनका लाभ मिल सके। महर्षि व्यास जी का यह क्रान्तिकारी कदम समाज के सभी वर्गों के लिये प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुआ है।

महाभारत एवं पुराणों में आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि में अनेक आख्यायिकायें प्रसंगानुसार उपलब्ध हैं यथा कौशिक ब्राह्मण का एक महिला से शिक्षा प्राप्त करना, फिर उसी का धर्मव्याध नामक कसाई से उपदिष्ट होना, इसी प्रकार जाजलि ऋषि का तुलाधार वैश्य से उपदेश ग्रहण करना–ये सारे उदाहरण महर्षि व्यास जी की अगाध मानवता को प्रकट करते हैं।

महर्षि व्यास जी ने समाज को संगठित करने में बड़ा योगदान दिया। पुराणों से विदित होता है कि उनका एक मण्डल था। जहाँ कहीं धर्म और संस्कृति पर आघात वे सुनते, मण्डल सहित वहीं पहुँच कर धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये प्रयत्न करते। प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है कि वे समय–समय पर सुदूर देश जैसे ईरान आदि जाकर पुनर्जन्म आदि सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार करते थे।

पुराणों के माध्यम से महर्षि व्यास जी ने मन्दिरों, तीर्थों और व्रत–उत्सवों का प्रचार–प्रसार किया। समाज को संगठित रखने के लिये वर्ण व जाति के भेद के रुकावट को दूर करते हुये मानव मात्र में भगवद्भक्ति, नाम संकीर्तन, तीर्थ और व्रतोपवास आदि का प्रसंग पुराणों में विस्तृत रूप से महर्षि व्यास जी ने प्रस्तुत किया है। हिन्दू समाज में जो थोड़ा बहुत संगठन वर्तमान समय में दिखाई देता है, वह महर्षि व्यास जी की देन है।

राजनीति क्षेत्र में भी महर्षि व्यास जी ने देश को एक सूत्र में रखने तथा विध्वंसकारी, आततायी राजाओं पर नियंत्रण रखने के लिए युधिष्ठिर के माध्यम से राजसूय यज्ञ कराया। इस प्रकार दिग्विजय के द्वारा दुष्ट राजाओं को दबा दिया गया। बाद में राज्य के लिये धृतराष्ट्र एवं पाण्डुपुत्रों में युद्ध छिड़ गया तो महर्षि व्यास ने युद्ध टालने के लिए धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयास किया। शान्ति प्रयास असफल होने पर महर्षि व्यास जी ने वनवास के समय अर्जुन को मंत्र का उपदेश देकर तपस्या हेतु हिमालय भेजा। फलस्वरूप अर्जुन को अतुलनीय शक्ति प्राप्त हुई और महाभारत के युद्ध में पाण्डव विजयी हुये।

✿ ✿ ✿

''संस्कार शक्ति व साधना शक्ति''

—कु० रुक्मणी वर्मा (सहारनपुर)

(गतांक से आगे)

समर्पण बिना गुरु कृपा नहीं मिलती तथा कृपा मिलने पर भी जब तक दुर्गुण कोई न कोई बचा हो तो ईश्वर और गुरुदेव वह दुर्गुण भी किसी न किसी प्रकार निकालकर पूर्ण आत्मसमर्पण करवाते हैं। साधक को तब आगे की यात्रा निर्बाध गति से करवाते हैं अर्थात् अपने में लीन करते हैं। दुर्गुण कोई भी हो, वह साधना में बाधक बना ही रहेगा। कभी—कभी मनुष्य अपने अन्दर छुपे हुए दुर्गुण को पहचान भी नहीं पाता, उसे आभास तक नहीं हो पाता कि अमुक विषय में तेरा लोभ या द्वेष या अहम् झलक रहा है और स्वयं में मुदित मन भी रहता है। कभी—कभी किसी बात को दूसरे भी पहचान नहीं पाते क्योंकि वे भी उसी स्तर के हों तो कैसे पहचानेंगे। जब किसी व्यक्ति का मानसिक व आध्यात्मिक स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है तो उसकी गलती साधारण सी भी व विशेष भी शायद दूसरे की पकड़ में न आये परन्तु ईश्वर व गुरुदेव को हर मानसिक स्तर का ज्ञान रहता है, वे उस गलती को या अहम् और ईर्ष्या तथा लोभ को तुरन्त ताड़ लेते हैं और उस दुर्गुण को तुरन्त दूर करते हैं। मनुष्य गलतियों का पुतला है। कब क्या गलत हो जाये या किस परिवेश में वह क्या कह रहा है, यह भी अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। आध्यात्म विषय बहुत सूक्ष्म होते हैं, इस मार्ग में शिष्य जाने—अनजाने में हजारों गलतियाँ करता है, धीरे—धीरे सुधार भी होता रहता है परन्तु पग—पग पर अहसास पक्का होता रहता है कि अरे ! ये तो भूल हो गयी। ओहो ! ये तो गलती बहुत भारी निकली, मैं तो इस बात को छोटी सी समझता था। अरे ! यह सब बातें तो वास्तव में मेरे दुर्गुण थे और इन दोषों की तरफ कभी मेरा ध्यान भी नहीं गया। जितना गहराई में व्यक्ति डूबता चला जाता है, उतना ही स्वदोष दर्शन उसे होता रहता है तथा अन्तःकरण की धुलाई होती रहती है तथा जिस दोष का उसे ज्ञान नहीं होता, वह ज्ञान उसके गुरुदेव व भगवान उसे तत्काल कराते रहते हैं।

इस विषय में श्री गुरु अर्जुन देव जी के शिष्य श्री गुरुदास जी (गुरुदास जी रिश्ते में श्री अर्जुन गुरुदेव जी के मामा थे) का उदाहरण देना यहाँ बिल्कुल सटीक लग रहा है। गुरु अर्जुनदेव जी ने गुरु ग्रन्थ साहिब का संकलन किया है। वे अपने शिष्य श्री गुरुदास जी को बहुत प्यार करते थे। श्री गुरुदास जी बहुत सुन्दर तरीके से व्याख्यान किया करते थे, बहुत सत्संग किया करते थे। यह सब देखकर गुरु अर्जुन देव जी बहुत प्रसन्न होते थे कि हमारा शिष्य आध्यात्म में अच्छी तरक्की पर है। श्री गुरुदास जी शास्त्रीय ज्ञान भी काफी रखते थे। एक दिन कोई प्रसंग चल रहा था जिसमें श्री गुरुदास जी ने कहा—

जे माँ होवे जारनी क्यों पुत्त पतारे।

अगर माँ बदचलन हो तो पुत्र को विचार नहीं करना चाहिये। न माँ को सजा ही देनी चाहिये और न उसका साथ छोड़ना चाहिये।

गाई माणक निगल्या पेट पाड़ न मारे।

अगर गाय हीरा खा जाये तो उसका पेट नहीं फाड़ना चाहिये।

जे पिर बहु घर हंडणा सत राखे नारे।

अगर पति बाहर पराई स्त्रियों के पास जाता है तो उसकी पत्नी को उसका अनुसरण नहीं करना चाहिये। अपने पतिव्रत को ही कायम रखना चाहिये। एक दो बातें और कहकर आखिर में कहा कि

जे गुरु स्वाँग वर्तदा सिक्ख सिदक न हारे।

अर्थात् अगर गुरु स्वाँग करे (कौतुक दिखाये या परीक्षा ले) तो शिष्य को कभी डोलना नहीं चाहिये। सभी प्रकार के उदाहरण देकर भाई गुरुदास जी ने सबको यही समझाया कि शिष्य को हर हालत में अडोल रहना चाहिये। गुरु अर्जुन साहिब ने सुना तो सोचा कि वाणी तो इसने बहुत ऊँची कह दी है, परन्तु इस वाणी में अहंकार की बू है। अतः कुछ देर बाद बोले, मामा जी ! हमारे पास घोड़े कम हैं। काबुल से अच्छे किस्म के घोड़े खरीदने हैं, आप जाकर खरीद लाओ। भाई गुरुदास जी ने कहा, "बहुत अच्छा गुरुदेव ! उन दिनों अशर्फियाँ होती थीं। अतः गुरुदेव जी ने अशर्फियों की थैलियाँ मँगवाकर आगे रख दीं। गुरुदास जी ने अशर्फियों को अपने हाथों से गिना और थैलियों के मुँह बन्द करके, थैलियाँ सन्दूक में डालकर खच्चरों पर लाद दीं। उन दिनों रेल नहीं होती थी। भाई साहिब बड़े विद्वान थे। कुछ सिक्खों (गुरुभाइयों) को साथ लेकर गाँव–गाँव में सत्संग करते हुए काबुल पहुँच गये।

काबुल में भाई साहिब घोड़ों के पठान सौदागरों से मिले। सौदा तय किया काबुल में इन्होंने तम्बू गाड़ कर उसमें अपना सामान रखा व वहीं ठहरे। सौदा तय करने के बाद जब रकम चुकाने तम्बू में गये और सन्दूक खोलकर थैलियों के मुँह खोले तो हैरान ! अशर्फियों की जगह रोड़े और ठीकरे भरे हुए मिले। अब घोड़ों का सौदा तय करके कुछ आदमियों को घोड़ों सहित गुरुदेव के पास भेज चुके थे कि मैं रकम देकर पीछे–पीछे आता हूँ। सोचने लगे कि पठानों के साथ सौदा तय किया है और वे रकम के लिये बाहर खड़े हैं। रकम न मिलने पर मुझे मार देंगे, प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। बहुत बार आँखें मल–मल कर हर थैली को उलट कर देखा, रोड़े और ठीकरियाँ ही दिखायी पड़ीं। युक्ति लड़ाकर पिछली तरफ से तम्बू फाड़कर बाहर निकले और छिपकर भाग पड़े। न लाहौर गये न अमृतसर। सोचा, क्या मुँह दिखाऊँगा गुरुदेव को ? अतः सीधे काशी जी जा पहुँचे। एक दो सिक्ख रह गये थे तंबू के बाहर। सिक्खों ने काफी इंतजार की और अन्दर आये

तो देखा कि भाई गुरुदास जी गायब हैं। सन्दूक व थैलियाँ सब खुले पड़े हैं और सारी अशर्फियाँ जमीन पर बिखरी पड़ी हैं। तंबू एक ओर से पीछे वाले भाग में फटा हुआ है। उन्होंने पठानों को सारी अशर्फियाँ देकर हिसाब चुका दिया और गुरुसाहिब के पास अमृतसर आकर सारी बात बता दी।

अब महात्माओं को चोरियाँ तो करनी नहीं होती। अतः भाई गुरुदास जी ने काशी में जाकर सत्संग करना शुरू कर दिया। लोग सत्संग सुनने आने लगे। उनकी वाणी में प्रखरता व मिठास देखकर कुछ ही दिनों में उनके बहुत सारे श्रद्धालु हो गये। काशी का राजा तो बहुत ही प्रभावित हुआ तथा इनका श्रद्धालू व सेवक बन गया। इधर कुछ समय बाद गुरु साहिब ने काशी के राजा को एक पत्र लिखा कि आपकी सभा में हमारा एक चोर है। उसकी मुश्कें बाँधकर हमारे पास भिजवा दो। चोर को ढूँढने की जरूरत नहीं, तुम केवल सत्संग में जाकर सबके बीच यह चिट्ठी पढ़कर सुना देना। जो चोर होगा, वह आप ही बोल पड़ेगा। अब भरे समुदाय में जब सारी संगत बैठी हुई थी और भाई गुरुदास जी सत्संग कर रहे थे, तब राजा ने वह चिट्ठी पढ़कर सुनाई कि हमारी सभा में गुरु अर्जुन साहिब का एक चोर है। चिट्ठी सुनते ही वह आप ही बोल पड़ेगा। पत्र सुनते ही श्री गुरुदास जी अपने आसन से तुरन्त उठकर बोले कि मैं हूँ गुरु अर्जुन साहिब का चोर। यह सुनकर सत्संग में एकदम सन्नाटा छा गया। लोग कहने लगे कि नहीं ! आप तो महात्मा हैं। चोर कोई दूसरा होगा। भाई जी ने बहुत विश्वास दिलाया। अब किसी की भी हिम्मत उनकी मुश्कें बाँधने की नहीं हो रही थी क्योंकि सब उनके श्रद्धालु थे। श्री गुरुदास जी ने अपने कन्धे पर पड़े साफे से अपनी मुश्कें स्वयं बाँध लीं और कहाँ काशी तथा कहाँ अमृतसर। इस हालत में स्वयं अमृतसर आये। अन्दर गुरुप्रेम छलछला रहा था। अनुभव बड़ा गहरा हो चुका था। गिरकर पैरों में पड़ गये। गुरु साहिब ने कहा कि 'मामा जी ! फिर से वही वाक्य सुनाओ। श्री गुरुदास जी प्रेम जल हृदय व आँखों में भरकर, नत होकर, निमाने भाव से ये लचीले शब्द बोले क्योंकि अब हर वाक्य का लहजा व शैली बदल चुकी थी। शब्द थे–

जे माँ पुत्ते विष दे, तिस ते किस प्यारा।

अगर माँ बेटे को जहर दे तो कौन बचा सकता है।

जो घर भन्ने पाहरू, कौन रखनहारा।

अगर पहरेदार ही घर तोड़ता है; चोरी करता है तो फिर रक्षा कौन कर सकता है।

बेड़ी डोबे पातनी, क्यों पार उतारा।

अगर पार उतारने वाला ही डुबाये तो कौन पार करे।

आगू ले ओझड़ पवे, किस करे पुकारा।

अगर रास्ता बताने वाला ही जान बूझकर उल्टे रास्ते चले तो पीछे लगने वाले

किसके आगे फरियाद करें।

जेकर खेते खाये बाड़, को लहे न सारा।

अगर बाड़ ही खेत को खाना शुरु कर दे तो खेत की खबर कौन लेगा।

जे गुरु भरमाये, सॉंग करे, क्या सिक्ख बेचारा।

और अगर गुरु स्वॉंग करें या शिष्य को भरमाये अर्थात् उसकी परीक्षा ले, कौतुक करें तो बेचारे शिष्य की क्या ताकत है कि वह स्थिर रह सके। जब भूचाल आता है तो बड़े-बड़े पहाड़ हिल जाते हैं, वृक्ष टूट जाते हैं, मकान हिल जाते हैं, उस समय जो कुछ स्थिर बचा रहता है, सो परमात्मा की इच्छा से। अतः यदि गुरु शिष्य की परीक्षा ले तो गुरु ही शिष्य को स्थिर रख सकता है और कोई नहीं। श्री गुरुदास जी को सत्‌गुरु साहिब ने अपने कंठ लगा लिया। अब गुरुदास जी का स्वभाव अति नम्र व वाणी निमानी हो गयी थी इसलिये अब मुख से यह वचन नहीं निकले कि जे गुरु स्वॉंग वर्तदा सिक्ख सिदक न हारे बल्कि जे गुरु भरमाये, सॉंग करे, क्या सिक्ख बेचाराये भाव हृदय की गहराई से निकले।

यह बात कटु सत्य है कि व्यक्ति का अहंकार खत्म हो रहा है अथवा खत्म हो गया, उसकी एक ही कसौटी है कि उसकी वाणी का रूपान्तर होता रहता है तथा अन्त में वाणी हर अवगुण की बू से खाली होती है। जब तक कोई भी रूप किसी भी दुर्गुण का (लोभ, मोह, क्रोध, काम, अहम्, ईर्ष्यादि) व्यक्ति के स्वभाव में है तो उसकी सूक्ष्म शक्ति वाणी में आयेगी ही आयेगी और शब्दों का प्रयोग टेढ़ा-मेढ़ा अर्थात् विकृत रहेगा ही रहेगा तथा चेहरे पर वे आभायें स्पष्ट उभरेंगी ही और ऐसा होने से उसे कोई नहीं रोक सकता, इस प्रकार उसका व्यवहार भी सरल व सीधा न होकर वक्र रहेगा ही रहेगा। अतः यह बात सत्य है कि जैसे-जैसे भक्ति में कदम आगे बढ़ते जायेंगे, साधक का अन्तःकरण निर्मल होता जायेगा। कहते हैं कि रस्सी जल जाती है पर उसके बल नहीं जाते परन्तु आध्यात्मिक मार्ग में यह कहावत लागू नहीं होती। आत्मज्ञान की, योगी की, भक्ति की, निष्काम कर्मयोग की किसी भी योग की पूर्ण पराकाष्ठा में न रस्सी रहती न रस्सी के बल क्योंकि रस्सी लाकर परमात्मा उसकी राख वायु के थपेड़े खिला-खिलाकर चारों तरफ धूल के कणों में इस प्रकार बिखेरता है कि रस्सी का पूर्ण रूप ध्वस्त हो जाता है। जलाकर बल पड़ी हुई रस्सी वह रखता ही नहीं। यदि साधक का समर्पण हो गया तो पत्तों में पानी पिलवा देता है वह परमात्मा, चॉंदी के गिलास में पानी पीने वालों को। अतः रस्सी जल गयी पर बल नही गये यह कहावत भौतिक जीवन में ही लागू है।

'चोर चोरी से जाये पर हेरा-फेरी से न जाये', यह कहावत भी भौतिक जीवन में ही लागू होती है। अध्यात्म जगत में समर्पण के मार्ग में चोरी से भी हाथ धोना पड़ता है व हेरा-फेरी से भी, तब जाकर उसका यथार्थ स्वरूप सामने आता है। निर्विकल्प समाधि में कहने को ही ये चार अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है यथा- विचार दर्शन, विचार सर्जन,

कोई क्या हमारा होगा ? सद्गुरुदेव के सच्चे साधक भक्त की जीते जी मृत्यु का अनुभव होता है। गुरुदेव अपनी विभिन्न लीलाओं के द्वारा उसे जन्म-मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त कर देते हैं। उस पवित्र मार्ग का अनुगामी बनने पर निर्जन वनों, मन्दिरों में भटकने की आवश्यकता नहीं स्वतः ही हमारे मन मस्तिष्क से माया-मोह हटने लगते हैं। उस श्रेय मार्ग का अनुगामी बनने के पश्चात् पारलौकिक सुख का शाश्वत आनंद उठाते हैं। इसी श्रेय मार्ग को अपनाने का उपदेश गुरुदेव अपने शिष्यों को देते हैं। शिष्यों की वस्तु की उन्हें कोई चाह नहीं होती वो दाता है-याचक नहीं। सर्वसमर्थ गुरुदेव के पास तो दया का अपार भण्डार है। वो अपने पापी से पापी शिष्य का भी क्षण भर में उद्धार कर देते हैं।

आवश्यकता है तो बस अपार श्रद्धा व विश्वास की ! इस संसार में जब भी किसी ने परमार्थ के मार्ग में प्रगति की है किसी गुरु के मार्गदर्शन में ही की है। अर्जुन ने भगवान कृष्ण से, स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश लिया। मनुष्य को संसार में हर प्रकार की विद्या एवं कुशलता प्राप्त करने के लिए मार्गदर्शक गुरुदेव की आवश्यकता पड़ती है। जैसे एक छोटा बालक बचपन में अपनी माँ से ही चलना सीखता है, उठना-बैठना व व्यवहारिक बातें सीखता है। मनुष्य के जीवन में उसकी पहली गुरु माँ ही होती है। हमारा जीवन एक लहराता हुआ सागर है उसमें गुरु ही जहाज है और गुरु ही जहाज को चलाने वाला कप्तान है। वो ही हमें सासांरिक तूफानों से बाहर निकाल सकते है। जिस प्रकार हम जहाज पर सवार होकर यात्रा करना चाहते हैं मगर हम जहाज को चलाना नहीं जानते यदि कोशिश करके उसे चलाना भी चाहे तो ज्ञान के अभाव के कारण विनाश को ही प्राप्त होते हैं। यदि हम उस जहाज को चलाने से पहले उसके विषय में ज्ञान प्राप्त कर लें तो हम उसको भली-भाँति चलाकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

इसी प्रकार हमें आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के लिए भी गुरु की आवश्यकता पड़ती है जो कि हमें परमेश्वर को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। सद्गुरुदेव की आत्मिक प्रेरणा के सहारे ही हम उन्नति कर सकते हैं गुरुदेव ही वह ज्ञान रूपी दीपक हैं जो हमारे अंतर्मन में छिपे हुए समस्त अज्ञान को नष्ट कर हमें सद्मार्ग दिखाते हैं।

"अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानान्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

गुरुदेव अपने दोनों हाथों से अमूल्य निधि लुटाते हैं वे अपने सभी शिष्यों में समभाव रखते हैं। मगर जो जितना ग्रहण कर सकता है उसे उतना ही मिलता है। गुरुदेव तो सबको बराबर देते हैं मगर यह तो हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम कितने काबिल हैं। कितना ग्रहण कर सकते हैं। सद्गुरु के हजारों-लाखों शिष्य होते हैं। मगर उनमें से कोई एक ही ऐसा भाग्यवान शिष्य होता है जो गुरुदेव के परम आध्यात्मिक प्रसाद को ग्रहण

करता है। यह सब हमारे कर्मों पर निर्भर करता है। हम कितना अपने आप को साधना के मार्ग पर तपा सकते हैं। जो भी भक्त शिष्य अपने गुरुदेव के स्वरूप को चौबीस घण्टे साथ लिए फिरते हैं हमेशा इसी आनंद में मग्न रहते हैं। सोए हों, जागते हों, जंगलों में हों, पहाड़ों में हों, बस्ती में हों, जहाँ कहीं जैसे भी हो वे हमेशा उसी मस्ती में रहते हैं, दुनिया की कोई वस्तु उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनका ध्यान इस ओर जाता ही नहीं। वे तो मस्त हुए फिरते हैं, जब वो अपने गुरुदेव के दर्शन करते हैं उनके ध्यान में मग्न रहते हैं तब उन्हें अपने आपका ही होश नहीं रहता। फिर उनको घर–बाहर का क्या होश रहेगा ? उनको दुनिया की किसी चीज की परवाह नहीं तो दुनिया के तानों की क्या परवाह होगी ?

घर–बार त्यागने से भगवे–पीले वस्त्र पहनने से कोई वैरागी नहीं बनता। ये तो अपने–आपको ही धोखा देना है जो अपने गुरुदेव द्वारा बताये मंत्र रूपी रंग में रँग जाते हैं वो गृहस्थी में रहते हुए भी वैरागी है, क्योंकि उनका ध्यान तो कर्मरत रहते हुए भी अपने परमपिता की ओर है।

जब तक गुरुदेव की शरण हासिल नहीं करेंगे तब तक कर्मों का यह सिलसिला समाप्त नहीं होगा। इसलिए या तो हम साधना करके मन और माया के दायरे से पार हो जायेंगे या सद्गुरु से प्रेम करके हम मन और माया के दायरे से पार हो जाएँगे। मगर हम जो साधना करते हैं, अभ्यास करते हैं, यह गुरुदेव के प्रेम बिना नहीं हो सकती। यह साधना भी हमारे अंदर गुरुदेव का प्यार पैदा करती है जितना हमारा आंतरिक विकास होगा उतना ही गुरुदेव से प्रेम बढ़ेगा। उतना ही दुनिया से मोह निकलेगा, दुनिया से प्यार निकलता जाएगा। परमात्मा और गुरुदेव अभिन्न है। इसलिए जितना हम गुरुदेव के नजदीक होते हैं उतना ही हम परमात्मा के दर्शन अपने अंतर में करेंगे। क्योंकि वही परमतत्व हमारे गुरुदेव है जिसे हम पहचान नहीं पाए। उन लीलाधारी की महिमा अपरम्पार है जब तक वो हमें अपनी शरण में नहीं लेंगे तब तक हम परमगति परममोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते। अतः हमें गुरुदेव के प्रति सच्चा प्रेम, विश्वास, श्रद्धा अपने अंदर प्रस्फुटित करनी चाहिए। बड़भागी है हम जो हमें गुरुदेव की शरणागति प्राप्त है। यह हमारे पुण्य कर्मों का ही फल है, गुरुदेव के वास्तविक स्वरूप की पहचान कर हमें अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को पहचानना चाहिए।

भगवान से प्रेम होना भक्ति करना वास्तव में एक अद्भुत घटना के रूप में सामने आती है। बहुत ही भाग्यशाली होती है वे आत्माएँ, वो परमपुरुष जो कि मीरा, नरसी भगत, या फिर कबीर बनकर सामने आते हैं। मगर एक प्रेम एक भक्ति थोड़ी आसान है और वह है गुरुभक्ति। अपने गुरुदेव से प्रेम ! पतंजलिप्रणीता एक तत्व के अभ्यास का यह बड़ा

सरल और अनुभूत उपाय है। आज हम सबके सामने यही सुपथ है अपने गुरुदेव का ध्यान, उन्हीं का चिन्तन, उन्हीं की वार्ता, उनकी कथा और उन्हीं का काम, उनकी हर आज्ञा का पालन। अगर हम ऐसा करेंगे तो एकत्व का अभ्यास हमारे जीवन में स्वतः ही होने लगेगा और इसके परिणामस्वरूप योग साधनों के विघ्नों का निराकरण भी होता जाता है बिना गुरु कृपा के योग साधना भी सफल नहीं हो पाती। यह कथन न तो कोरी कल्पना है और न ही किसी तार्किकता का निष्कर्ष। यह तो अनुभूति में सनी–पगी बातें है। जिस गति से जो गुरुभक्ति की डगर पर चलेंगे उसी तीव्रता से उनकी साधना में उनके विघ्नों का शमन होने लगेगा, मगर यह सच भी निर्मल चित्त वालों के ही समझ में आ पाता है। क्योंकि जिन्हें तर्क वितर्क करने की आदत है, जो गुरु शब्द में छिपे गूढ़ अर्थ को नहीं समझ पाते उनके लिए यह सब मिथ्या ही साबित होगा, मगर कोई कितना ही तर्क वितर्क करे, इन शब्दों में अपने–अपने विचार से निष्कर्ष निकालें, मगर हम तो सिर्फ यह जानते हैं कि गुरुदेव ही हमें भव से पार लगा सकते हैं। उनके समान प्यार करने वाला संसार में कोई है ही नहीं। सद्गुरु से बढ़कर हितैषी हमारा कोई हो ही नहीं सकता। हम जैसे जीवों का उद्धार करने के लिए ही तो वो इस पृथ्वीलोक पर अवतरित हुए हैं इससे बड़ी कृपा उनकी और क्या होगी ?

अगर हम स्वयं इस मार्ग पर चलकर देखें, गुरुदेव से अपार प्रेम, भक्ति अपने अंदर पैदा करें तो हम स्वयं अनुभव करने लगेंगे कि वो परम दयालु, करुणा के सागर हमारे सारे दुःखों को, संकटों को स्वयं वहन करने लगे हैं। सांसारिक जीवन में अगर हम किसी से कुछ प्राप्त करना चाहें तो हमें बदले में कुछ देना पड़ता है मगर गुरुदेव के दरबार में लेन–देन का सौदा नहीं यहाँ तो बस भाव की, श्रद्धा की बात है कितना हम उनकी आज्ञाओं का पालन करते हैं। हमारे सद्गुरुदेव के दरबार में जाने कितनी अलौकिक घटनाएँ घटित हुई हैं। और आज भी हो रही हैं। सद्गुरुदेव अपने परमभक्त शिष्यों की पग–पग पर रक्षा करते हैं। हम सांसारिक जीवों के ऊपर माया रूपी पर्दा पड़ा हुआ है। इसलिए हम अपने गुरुदेव को पहचान नहीं पाते मगर वो सर्वदृष्टा हैं, उनकी हमारे हर कर्मों पर हर गतिविधियों पर नजर है।

अतः हमें अपने गुरुदेव के बताए मार्ग का अनुगामी बनना चाहिए यही हमारे परमकल्याण का मार्ग है–

''सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने
नमः श्री गुरुनाथाय अविद्या ग्रन्थि भेदने:।''

✿ ✿ ✿

शान्ति-समता-मुक्ति आवश्यक

(महर्षि अरविन्द)

आत्मानुभव के कार्यक्षम होने के लिये इतना ही पर्याप्त नहीं है कि पुरुष (जीव) प्रकृति के वश से मुक्त हो; बल्कि यह आवश्यक है कि पुरुष की अपरा प्रकृति और उसकी अनभिज्ञ क्रियाशक्तियों के प्रति जो स्नेहासक्ति है वह वहाँ से हटाकर परा भागवती शक्ति श्रीमाता को समर्पित हो।

अपरा निम्नगा प्रकृति को उसकी यन्त्रवत् अन्ध क्रियाशक्तियों को माता समझ लेना भूल है। यह प्रकृति तो एक यन्त्रसामग्री है जो विकासशील अज्ञान को गति देने के लिये प्रस्तुत की गयी है। जैसे मनोऽभिमानी, प्राणीभिमानी या देहाभिमानी आत्मा ही परमात्मा नहीं है, यद्यपि वह आता परमात्मा से ही है—वैसे ही प्रकृति की यह यान्त्रिकता ही भागवतशक्ति या माता नहीं है। अवश्य ही इस यान्त्रिकता ही भागवतशक्ति या माता नहीं हैं। अवश्य ही इस यान्त्रिकता में और इसके पीछे माता का अंश है, जो विकासक्रम साधने के लिये इसे बनाये हुए है। पर माता स्वयं जो कुछ हैं वह कोई अविद्या की शक्ति नहीं है, बल्कि भगवान् की चिच्छक्ति, ज्योति, परा प्रकृति हैं, जिनसे हम मुक्ति और भागवती पूर्णता की कामना करते हैं।

पुरुष चैतन्य का अनुभव—शान्त, स्वच्छन्द, त्रिगुण—कर्मो का अनासक्त, अलिप्त साक्षित्व मुक्ति का साधन है। शान्ति, अनासक्ति, शान्तिमय शक्ति और आत्मरति को प्राणों में, देह में और मन—बुद्धि में ले आना होगा। यदि इस आत्मरति की इस प्रकार मन, बुद्धि, प्राण और देह में प्रतिष्ठा हो गयी तो प्राणगत शक्तियों के उपद्रवों का शिकार होने का प्रसंग नहीं आ सकता। पर यह शान्ति, समत्व, स्थिर शक्ति और आनन्द का संस्थापन आधार में माता की शक्ति का केवल प्रथम अवतरण है। इसके परे एक ऐसा ज्ञान है, एक ऐसी संचालन शक्ति है, एक ऐसा गतिशील आनन्द है जिसका अनुभव सामान्य प्रकृति की उत्तमावस्था में, अत्यन्त सात्विक अवस्था में भी नहीं हो सकता; क्योंकि वह भागवतगुण है।

सबसे पहले शान्ति, समता, मुक्ति आवश्यक है। गतिशील आत्मानन्द को अपरिपक्व अवस्था में नीचे ले आने का प्रयास करना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसी अवस्था में उसका नीचे आना क्षुब्ध और अशुद्ध प्रकृति में आना होगा, जो उसे अपना सकेगी और इससे भयंकर उपद्रव हो सकते हैं।

✿ ✿ ✿

विचार विसर्जन व निर्विचार। परन्तु जब गुजरो तो विचार दर्शन की हजारों–लाखों गलियां हैं, जिनमें उलझ–पुलझ कर नवीन साधक रह जाते हैं और यही उक्ति चरितार्थ होती है, **'आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास'**। विचार सर्जन अर्थात् सीढ़ी के दूसरे डण्डे पर पैर रखने की हिम्मत लाखों में दस व्यक्ति ही कर पाते हैं तथा उन दस में से कोई एक विरला ही विचार विसर्जन वाले क्षेत्र में आ पाता है। मन, मुख और आचरण ये तीनों एक हो जाते हैं जब भक्ति परिपक्व होने लगती है। मन में कुछ और बात रखे हुए हैं, मुख की आभा कुछ और दर्शा रही है तथा आचरण में वाणी सहित क्रिया कुछ और हो रही है तो समझो अभी भक्ति में यथार्थ भाव पदार्पण नहीं कर पाये। यह क्रिया स्वयं भी कसौटी पर कसी जा सकती है। हम स्वयं अपनी परख करें कि क्या हम अमुक व्यक्ति से द्वेष नहीं रखते ? क्या हम उसके सामने बनावटी शब्द, चापलूसी व चतुराई के शब्द पेश नहीं करते ? क्या उस व्यक्ति की छवि सामने आते ही हमारा व्यवहार स्वभावतः बरबस अटपटा नहीं हो जाता ? क्या हम कुछ जले–कटे शब्दों का इस्तेमाल नहीं कर जाते ? क्या हमारा चेहरा उसको देखकर बुझ नहीं जाता ? यदि ऐसा होता है तो हम निम्न श्रेणी में हैं और हम पर यही उक्ति चरितार्थ होती है –

मन में राखे और कुछ वाणी में कुछ और।
कर्म करे कुछ और ही झूठे तीनों ठौर।।

✿ ✿ ✿

श्री श्यामलाल खन्ना नहीं रहे !

टाइम्स ऑफ इण्डिया के १ जून २००५ के अंक में प्रकाशित समाचार के अनुसार भी प्रभुजी के अनन्यनिष्ठ बालक श्री श्यामलाल खन्ना का देहावसान हो गया है। ८६ वर्षीय श्री खन्ना का निधन १६ मई २००५ को हुआ। सिद्धयोग परिवार उनके परिवारीजनों के प्रति शोक-संवेदना प्रकट करता है और प्रार्थना करता है कि श्री प्रभु जी अपने मंगलमय श्री चरणों में उन्हें अभय पद प्रदान करने की कृपा करें।

–संपादक

परमधाम के पथ प्रदर्शक गुरुदेव

–**रचना शर्मा** (गंगापुर सिटी)

कितना पावन और मनोहारी शब्द है गुरुदेव जिसका बार–बार उच्चारण करने मात्र से जीव का उद्धार हो जाता है। गुरुदेव हमारे प्राणाधार, सकल सृष्टि के संचालक, नियामक व कर्त्ता उन्हें क्या–क्या उपमा दें हमारे पास तो उनकी व्याख्या करने लायक शब्द ही नहीं है। अगर हम अपनी वाणी से उनका गुणगान करें तो हमारे जाने कितने ही जन्म बीत जाए मगर हम उनकी दयालुता उनकी परोपकारिता का वर्णन नहीं कर पायेंगे और अगर हम उनकी करुणा कृपा को शब्दों की परिधि में बांधना चाहे तो भी उन्हें शब्दों की लड़ियों में पिरोना असंभव है कहा भी गया है।

''सब पर्वत स्याही करूँ, घोरू समुन्दर जाय।
धरती का कागज करूँ, सद्गुरु स्तुति न समाय''।।

सद्गुरु जो कि अपने सूक्ष्म ज्योतिर्मय स्वरूप में सृष्टि के प्रारंभ से लेकर आदि, अन्त तथा मध्य में विराजमान रहते हैं सृष्टि के विनाश प्रलयकाल में भी जो अखण्ड ज्योति रूप में सदा ही प्रकाशित रहते हैं जो इन्द्रिय, मन बुद्धि आदि से परे है। इन्द्रियों से परे (सूक्ष्म) विषय है। विषय से परे मन है और मन से परे बुद्धि। बुद्धि से परे महान आत्मा और आत्मा से परे अव्यक्त। अव्यक्त से परे जो परम पुरुष महान विराट सत्ता है वह परम पुरुष परमात्मा ही है। हमारे सद्गुरुदेव वही सर्वप्रधान पराकाष्ठा व परमगति है। उसे ही वेदों में ''ओंकार'' कहा गया है। वह परमतत्व सद्गुरुदेव अपने जन्मजन्मांतर के शिष्यों का उद्धार करने के लिए ही अवतरित होते हैं, सद्गुरुदेव का प्राकट्य हम जैसे संसारी जीवों को भव पार करने के लिए होता है।

पंच ज्ञानेन्द्रियाँ जब अपने–अपने विषय कर्मों से विरत होकर मन के सहित आत्मवस्थित हो जाती है बुद्धि विविध विषयों की ओर से निश्चेष्ट हो जाती है, उसी अवस्था का नाम है–परमगति। गुरुदेव अपनी करुणा कृपा के द्वारा हमें उस परमगति तक पहुँचने का पथ प्रदर्शित करते हैं। हमारे गुरुदेव हमें उस परमगति को प्रदान करने के लिए भाँति–भाँति की लीलाऐं करते हैं जिन्हें हम साधारण मनुष्य समझ ही नहीं पाते। मगर जब सही वक्त आता है तो गुरुदेव किसी न किसी घटना, स्वप्न के द्वारा हमारे अंदर सोए हुए ज्ञान को जागृत करते है। हमें वह पथ वह मार्ग दिखलाते हैं जो कि हमारे जीवन का उद्देश्य है। जिस पर चलकर ही हम अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं हमारे गुरुदेव ही प्रभु के परमधाम का मार्ग दिखलाते है। तथा सांसारिक, तूफानों झंझावातों से बचाते हुए अपने परमधाम में ले जाते हैं जो कि उनका स्वयं का धाम है जहाँ हमारे सद्गुरुदेव ही सूक्ष्म

ज्योतिर्मय स्वरूप में विराजमान है। उस प्रभु के परमधाम में न तो सूर्य है न चन्द्रमा न तारे गृह नक्षत्र आदि है वह तो सद्गुरुदेव के दिव्य तेज रूपी प्रकाश से आलोकित रहता है। हमारे सद्गुरुदेव ही वहाँ मौन भाव धारण किए अपने तेजोमयी रूप से विराजमान हैं, उनके ही स्वरूप से निकलने वाली अत्यंत प्रकाशमयी किरणों से यह सारा विश्व आलोकित हो रहा है। सारी सृष्टि में गुरुदेव का तेज व्याप्त है।

उन परम दयालु भक्तों पर अकारण करुणा कृपा बरसाने वाले गुरुदेव की सर्वव्यापकता का वर्णन न तो आज तक कोई कर पाया और न ही कभी कर पाएगा। प्रेम व दया की साक्षात प्रतिमूर्ति गुरुदेव के पास तो दया व प्रेम का उमड़ता अथाह सागर है जिसका कोई ओर छोर नहीं है। गुरुदेव की महानता सर्वव्यापकता किसी की सुनी सुनाई बातों से ग्राह्य नहीं हो सकती अपितु वह तो आत्मा का विषय है। इसे तो केवल अन्तःकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है। वह तो हमारे स्वयं के अनुभव करने का विषय है। जिसने भी अपने गुरुदेव के इस सर्वव्यापी रूप का दर्शन किया है, इस परमानंद को अनुभूत किया है वह भी वाणी के द्वारा इसका वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि वह अद्भुत क्षण अलौकिक दृष्टांत अनिर्वचनीय व अकथनीय है।

वो परमसत्ता अलौकिक परमपुरुष हमारे बीच रहते हैं मगर हम सांसारिक जीव अपनी बुद्धि सीमित होने के कारण उन्हें पहचान नहीं पाते क्योंकि ये अखंड कोटि ब्रह्माण्ड नायक अपने आपको साधारण वेष में छिपाए रहते है कोई विरला ही ऐसा भाग्यवान शिष्य होगा जो कि अपने गुरुदेव के अंदर छिपे हुए असाधारण अलौकिक रूप का दर्शन कर सके। क्योंकि गुरुदेव के उस विराट रूप का दर्शन करने के लिए ब्राह्य चक्षुओं की अपेक्षा अन्तर्चक्षुओं को खोलने की आवश्यकता है। इस पृथ्वी लोक पर समस्त जीव जन्तुओं को माया मोह रूपी तिमिर ने आच्छादित कर रखा है और जब तक गुरुदेव अपने ज्ञान रूपी प्रकाश की तेजोमयी किरणों से इस माया–मोह रूपी तिमिर को नष्ट नहीं करते तब तक हमें वास्तविक सत्य का ज्ञान नहीं हो पाता। जिस प्रकार से प्रातःकालीन बेला में उदित हुआ सूर्य अपनी सुनहरी किरणों से रात्रिकालीन अंधकार को दूर करता है और समस्त जग में उजियारा करता है उसी प्रकार गुरुदेव भी अपने शिष्य के अंदर छिपे हुए अज्ञान रूपी अंधकार को अपनी ज्ञान रूपी किरणों से विदीर्ण कर सद्मार्ग दिखलाते हैं।

परमात्मा क्या है ? कैसा रूप है उसका ? कहाँ से आए हैं ? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न हमारे हृदय से उद्भूत होते हैं इन समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हमें गुरुदेव के सान्निध्य में जाने पर मिलने लगता है। जिस सुख की तलाश में हमने अपने जीवन के अनमोल क्षण गँवाए वो तो वास्तविक सुख है ही नहीं, वास्तविक सुख सच्चा प्रेम तो हमारे गुरुदेव के पास है जिनके पास बैठने मात्र से, जिनके सान्निध्य से हमें सांसारिक जीवन

की क्षणभंगुरता का ज्ञान होता है। केवल प्रवचन सुनने, चापलूसी करने से काम नहीं बनता अगर हमें उन अविनाशी परमपुरुष के वास्तविक रूप की पहचान करनी है तो उन्हें अपना सर्वस्व न्यौछावर करना है। अपार निष्ठा, श्रद्धा व विश्वास की भावना अपने हृदय के अंदर प्रस्फुटित करनी होगी। उन करुणामयी गुरुदेव के ध्यान में विभोर होने पर जो सुखद अनुभूति होती है उसका वर्णन तो किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता जिस प्रकार गूँगे व्यक्ति को गुड़ खिलाकर उससे पूछा जाए कि गुड़ का स्वाद कैसा है ? तो वो कुछ नहीं बोलेगा बस उसके हाव–भाव ही हम अनुभव कर सकते है कि उसे वह गुड़ कैसा लगा ?

सच्चा शिष्य जो कि गुरुदेव को अपना माता–पिता, भाई, बन्धु, सखा, मित्र सब कुछ मानता है वह भाँति–भाँति से अपने गुरुदेव को रिझाना चाहता है। कभी वह एक शिशु की भाँति उसके समीप जाकर करुण क्रन्दन करने लगता है या फिर कहें कि जिस प्रकार छोटा बालक अपनी माँ के समीप जाकर इसलिए रोता है कि वो मुझे गोद में उठा ले उसी प्रकार मेरे गुरुदेव भी मुझे अपने हृदय से लगा लें, एक दुलार भरी थपकी मेरे सिर पर फेर दें।

उसके अंदर छिपे उद्‌गार अश्रुकणों के माध्यम से व्यक्त होने लगते हैं। गुरुदेव तो भाव के भूखे हैं। उन्हें साधारण फूलों, मालाओं की आवश्यकता नहीं, फूल अश्रुबिन्दु के चढ़ाओ, उनके स्मरण से वाणी मूक हो जाए, हृदय भाव से इतना भर जाए कि विचार की कोई लहर आनन्द में न उठे अन्तराल आनंद से आपूर हो जाए। सच्ची उपासना में प्रतिज्ञा मे रोम–रोम पुकारने लगता है आ जाओ। श्वांस–श्वांस में स्वर फूटता है, आकर मिल जाओ। हृदय की हर धड़कन कहती है– अब देर न लगाओ। बस इसी प्रतिज्ञा में अक्रिया की घटना सहज घट जाती है। हमें आभास होता है कि जिन गुरुदेव को हम अपने आप से दूर समझते थे जिनके लिए हम प्रतिज्ञारत थे वो तो स्वयं कबसे हमारी बाट निहार रहे हैं, कबसे बाँह फैलाए हमारे सामने खड़े हैं। बस वो तो इंतजार कर रहे थे कि कब मेरा शिष्य अंदर से खाली होगा वे जान लेते हैं कि अब मेरे शिष्य के अंदर न काम है, न क्रोध है, न लोभ, मोह और न अहंकार है। सांसारिक इच्छाएँ, कामनाएँ समाप्त हो गई हैं। तब हमारे गुरुदेव हमें अपनी शरण में ले लेते हैं गुरुदेव की कृपा रूपी बरसात अपने शिष्य पर होने लगती है।

गुरुदेव शिष्य को जो मार्ग दिखलाते हैं वह परमगति परम–मोक्ष को दिलवाने वाला होता है। उस पथ का अनुगामी बनने के बाद ही बोध होता है कि जिन संसार के लोगों को भाई–बन्धुओं, घर–परिवार के सदस्यों को अपना समझते हैं वो सब हमसे बहुत दूरी बनाए हैं। यह शरीर जिसको हम अपना समझकर बैठे हैं वो ही अपना नहीं है तो फिर और

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था...

- हमें जो कुछ चाहिये वह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय: लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को दुर्बल और छोटा बना देती है।

- अपने जीवन में मैंने जो एक श्रेष्ठतम पाठ पढ़ा, वह यह कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिये, जितना कि उसके लक्ष्य के विषय में। ...इस एक तत्व से सर्वदा बड़े-बड़े पाठ सीखता आया हूँ। और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्व में है - साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना कि साध्य की ओर।

- अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है, तो कीट-पतंगों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ ? जराजीर्ण होकर थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए भी लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं है ?

PRINTPOINT 0562-2262261

प्रेषण-कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

☐☐☐☐☐☐☐

धर्म भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषांजहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुण चिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्।।

(श्रीमद्भागवत् मा० ४/८०)

अर्थात्–भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसी का आश्रय लिए रहें। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मों से मुख मोड़ लें। सदा साधुजनों की सेवा करें। भोगों की लालसा को पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरों के गुणों का विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत सेवा और भगवान की कथाओं के रस का ही पान करें।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) बासलाल शर्मा